श्री रामकृष्ण-विवेकानन्द भाव-धारा की एकमात्र हिंदी मासिकी

वर्ष · ६ अंक · ६ जून : १९८७

विवेक शिखा

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

११. श्री पी० राम—पटना (बिहार)
१२. श्री अशोक कुमार टाँटिया—कलकत्ता (प० बंगाल)
१३. श्री धर्म पाल—नई दिल्ली (नई दिल्ली)
१४. श्री रमेश चन्द्र कपूर—इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश)
१५. श्री पलक बसु—इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश)
१६. प्राचार्य, संतगजानन महाराज कॉलिज ऑफ इंजीनियरिंग—शेगाँव (महाराष्ट्र)
१७. श्री प्रभाकर सिंह—इलाहाबाद
१८. श्रीमती मंजु रस्तोगी—दुमका (बिहार)
१९. श्री कमल कुमार गुहा—कलकत्ता (पश्चिम बंगाल)
२०. श्री विवेक भुजंग राव कुलकर्णी—नागपुर (महाराष्ट्र)
२१. श्रीराम विलास चौधरी—मुपौल, दरभंगा (बिहार)
२२. डा० रमेश चन्द्र प्रसाद—देवघर (बिहार)
२३. श्री मातादीन मिश्र—सारण (बिहार)
२४. एम० एम० नावालगी—कादरा (कर्नाटक)
२५. श्री हेमराज साहू—नरसिंहपुर (म० प्र०)
२६. डा० प्रकाश चन्द्र मिश्र—पटना (बिहार)
२७. श्री विनोद ब्रजभूषण अग्रवाल—नागपुर (महाराष्ट्र)
२८. श्री केशरदेव भालोटिया—जरमुण्डी (बिहार)
२९. श्री धर्मवीर शर्मा—खण्डवाया (उत्तर प्रदेश)
३०. श्री शिवशंकर सुखदेव पाटील—शेगाँव (महाराष्ट्र)
३१. श्री गजानन महाराज संस्थान—शेगाँव (महाराष्ट्र)
३२. श्री दया शंकर तिवारी—लाल बाजार, सीवान (बिहार)
३३. श्री राजकुमार गडोडिया अपर बाजार (रांची)
३४. कुमारी चुक चुक—बेलगाँव (महाराष्ट्र)
३५. डॉ० श्रीमती वीणा कर्ण—पटना (बिहार)
३६. डॉ० सम्पत पाटील—भदोल (महाराष्ट्र)
३७. श्री रमाशंकर राय—वाराणसी
३८. श्री आर० के० यादव—फैजाबाद
३९. कुमारी अल्पना मकलेचा—बम्बई
४०. श्री हिम्मत लाल रणछोड़दास शाह—बम्बई
४१. श्री नीरज गुप्ता—रायपुर (मध्य प्रदेश)
४२. डॉ० गीता देवी—४४, टैगोर टाउन, इलाहाबाद
४३. डॉ० शैल पाण्डेय—४१, टैगोर टाउन, इलाहाबाद

इस अंक में

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो।

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—६ जून—१९८७ अंक—६

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

संपादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

सहायक संपादक

शिशिर कुमार मल्लिक

श्याम किशोर

संपादकीय कार्यालय :

रामकृष्ण निलयम्

जयप्रकाश नगर,

छपरा—८४१३०१

(बिहार)

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य	२५० रु०
वार्षिक	२० रु०
रजिस्टर्ड डाक से	३५ रु०
एक प्रति	२ रु० ५० पैसे

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजनेकी कृपा करें :

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

सीपी के अन्दर बहुमूल्य मोती होता है, सीपी का कोई मूल्य नहीं होता; परन्तु मोती के पूरी तरह तैयार होने तक सीपी बहुत ही आवश्यक है। मोती मिल जाने के बाद सीपी का महत्व नहीं रहता। जिसे सर्वोच्च सत्य, परमेश्वर की प्राप्ति हो गयी है, उसके लिए बाह्य आचार-नियमों की आवश्यकता नहीं रह जाती।

(२)

संसार में रहकर सब कर्तव्यों को करते हुए जो मन को ईश्वर में स्थिर रखकर साधना कर सकता है, वह यथार्थ में वीर साधक है। शक्तिवान् पुरुष ही सिर पर दो मन भारी बोझ लादकर चलते हुए गर्दन मोड़कर राह से गुजरती हुई बारात की ओर देख सकता है।

(३)

'भाँग-भाँग' कहकर कितना भी चिल्लाओ, उससे नशा नहीं चढ़ने वाला। भाँग ले आओ, उसे घोंटो, पियो, तभी उसका नशा चढ़ेगा। सिर्फ 'भगवान् भगवान' कहकर चिल्लाने से क्या लाभ ? नियमित रूप से साधना करो, तभी तुम्हें सिद्धि मिलेगी।

(४)

साधारण लोग 'थैलाभर' धर्म की बातें करते हैं पर उसका 'रत्तीभर' भी जीवन में नहीं उतारते। ज्ञानी व्यक्ति बोलते बहुत कम हैं किन्तु उनका सम्पूर्ण जीवन व्यवहार में उतरे धर्म की ही अभिव्यक्ति होता है।

(५)

साधु का कमण्डलु चारों धाम घूम आता है पर उसका कड़ुआपन ज्यों-का-त्यों ही रह जाता है। विषयी जीव का मन भी ऐसा हीहोता है।

दस दोहे

— डॉ० केदारनाथ लाभ

शयन स्वप्न जागरण में, रहना हरदम साथ।
हे बेलुड़ के नाथ नित, पकड़े रहना हाथ ॥१॥

वह व्याकुलता प्राण में, भर दो मेरे देव!
देखूँ नित सस्मित तुम्हें, रामकृष्ण स्वयमेव ॥२॥

मेरी यह विनती सुनो, हे बेलुड़पति आज।
पाँव नहीं बेताल हों, गिरूँ न, रखना लाज ॥३॥

चकाचौंध फिसलन भरा, यह मोहक संसार।
रामकृष्ण रक्षा करें, तब हो बेड़ा पार ॥४॥

झुक, सश्रद्ध प्रणिपात कर, यह बेलुड़मठ-द्वार।
यहीं द्वारका, अवध है, बदरी औ केदार ॥५॥

पावनतम पावनों में, महातीर्थ सद्धाम।
बेलुड़ मठ! तुमको विनत, नित शत कोटि प्रणाम ॥६॥

यह बेलुड़ मठ, रुक पथिक, झुका शीश अविराम।
परम शान्ति सुख धन्यता, यहीं परम विश्राम ॥७॥

आम्रकुंज सेवित सतत, चुम्बित गंग-तरंग।
यह बेलुड़ मठ, धर्म की, जलती शिखा अभंग ॥८॥

रामकृष्ण माँ सारदा, सहित विवेकानन्द।
बेलुड़ मठ में रम रहे, निजानन्द स्वच्छंद ॥९॥

त्रेता में श्रीराम थे, द्वापर में यदुनाथ।
रामकृष्ण कलिकाल में, हैं अग-जग के नाथ ॥१०॥

विवेक शिखा के ग्राहकों से निवेदन

प्रिय मित्रो,

भगवान श्रीरामकृष्ण एवं श्री माँ सारदा देवी के जीवन, आदर्श एवं जीवनदायी संदेशों तथा वेदान्त के उदात्त विचारों को विश्व के कोने-कोने में फैला देने की आवश्यकता का तीव्र अनुभव स्वयं विश्ववंद्य स्वामी विवेकानन्दजी ने ही किया था। पत्र-पत्रिकाएँ इस लक्ष्य की सिद्धि के लिए कारगर औजार साबित होंगे, इस तथ्य को स्वामीजी ने गहराई से महसूसा था। उन्होंने बार-बार अपने गुरुभाइयों एवं संन्यासी तथा गृही शिष्यों को इस महत् कार्य की ओर उत्प्रेरित भी किया था।

स्वामी ब्रह्मानन्द को न्यूयार्क से २५ सितम्बर, १८९४ को लिखे अपने पत्र में स्वामीजी ने लिखा था, "तुम लोगों को एक मासिक-पत्रिका का सम्पादन करना होगा। उसमें आधी बंगला रहेगी, आधी हिन्दी।" (पत्रावली : पृ० १७८) पत्रिका के बिकने की समस्या पर ध्यान देते हुए उन्होंने आलासिंगा पेरुमल को लिखा था, 'इस तरह की पत्रिकाओं को हमारे शिष्यों द्वारा सहायता मिलेगी ... । भारतीय पत्रों की सहायता भारतवासियों को ही करनी चाहिए। (पत्रा. द्वि. भाग पृ० ४७)। पुन: पेरुमल को ही स्वामीजी ने लिखा, ... "यदि हो सके तो समाचार-पत्र और मासिक-पत्रिका—दोनों ही निकालो। मेरे जो भाई चारों तरफ घूम-फिर रहे हैं वे ग्राहक बनायेंगे - मैं भी बहुत ग्राहक बनाऊँगा।" (पत्रा. २ भा. पृ. १८५) पत्रिका के लिए स्वामीजी की भावनाओं को इन्हीं उद्‌गारों से समझा जा सकता है।

स्वामीजी की ऐसी ही प्रेरणा से उत्प्रेरित होकर "विवेक शिखा" का प्रकाशन शुरू किया गया जो विगत छ: वर्षों से निरन्तर लोकप्रिय होती हुई अनवरत रूप से चल रही है। इस बीच कागज एवं मुद्रण की दरों में भयंकर वृद्धि होने के बावजूद अब तक इसकी सहयोग-राशि में कोई वृद्धि नहीं की गयी। फलत: हमें अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है।

अतएव, विवेक शिखा के कृपालु ग्राहकों एवं ग्राहिकाओं से अनुरोध है कि—

- आप में से प्रत्येक ग्राहक-ग्राहिका कम-से-कम २-३ नये ग्राहक बनाने अथवा अपने मित्रों एवं संबंधियों को उपहार के रूप में भेजने की कृपा करें तो विवेक शिखा की अपनी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ करने में मदद मिलेगी।
- आप विवेक शिखा के लिए विज्ञापन भी दे या दिलवा सकते हैं।
- विवेक शिखा के लिए आर्थिक अनुदान के रूप में रुपये विवेक शिखा के नाम से मनीआर्डर, चेक या ड्राफ्ट के द्वारा भेज सकते हैं।
- हमारे पास विवेक शिखा के पुराने विशेषांक--स्वामी वीरेश्वरानन्द स्मृति अंक (मूल्य ५/-) युवाशक्ति विशेषांक, (मूल्य ५/-), रामकृष्ण संघ शताब्दी अंक, (मूल्य ६/-) भी काफी बचे हैं। इन्हें भी खरीद सकते हैं। एक साथ १० या अधिक प्रतियाँ लेने पर ४०% छूट दी जायगी।

जनवरी से वर्ष का प्रारम्भ होता है। ग्राहक वर्ष के किसी भी माह से बन सकते हैं। ग्राहकों को जनवरी से सारे अंक उपलब्ध होंगे।

निवेदक

सम्पादक, विवेक शिखा

रामकृष्ण निलयम्, जय प्रकाश नगर छपरा, — ८४१ ३०१ (बिहार)

जीवन में साधना की आवश्यकता

—स्वामी सत्यरूपानन्द
बेलुड़ मठ।

[आध्यात्मिक जीवन के लिए साधना क्यों करनी चाहिए। इस सम्बन्ध में रामकृष्ण मिशन के वारिष्ठ साधु स्वामी सत्यरूपानन्दजी महाराजका "निसेसिटी ऑफ साधना इन लाइफ" नामक लेख वेदान्त केसरी, मद्रास के दिसम्बर, १९८० अंक में प्रकाशित हुआ था। प्रस्तुत लेख उसका हिन्दी रूपान्तर है। रुपान्तरकार हैं प्रो० सुरेश कुमार मिश्र।—सं०]

आत्मा के प्रति वेदान्ती—दृष्टिकोण की व्याख्या करते हुए स्वामी विवेकानन्द ने कहा था,—"प्रत्येक मनुष्य एक पूर्ण प्राणी है।" किन्तु, उलटे हर मनुष्य महसूस करता है कि वह अपूर्ण है और इसी से असंतुष्ट भी। तथापि, इस पूर्णता को प्राप्त करने की उसमें एक अदम्य लालसा होती है और जब तक पूर्ण बनने की उसकी यह लालसा सही अर्थ में संतुष्ट नहीं होती, वह कभी भी शांतिपूर्वक नहीं रह सकता। और; जैसा कि गीता कहती है—"शांति के बिना सुख आ ही नहीं सकता।" [गीता—२-७७]

वस्तुतः, मानव पूर्ण है। इस कारण, अपूर्णता का अनुभव मानव में कुछ सीमा तक बाहरी है। जब तक व्यक्ति इस बाहरी वस्तु के साथ स्वयं को संयुक्त मानता है, वह अपूर्णता की अनुभूति से छुटकारा पा ही नहीं सकता। चाहे वह कितनी भी चेष्टा क्यों न करे, और इसी क्रम में वह असंतुष्ट और दुःखी होता रहेगा।

इस पृथ्वी पर मानव-जीवन एक सुअवसर के रूप में हमें मिला है ताकि हम अपनी अन्तर्निहित पूर्णता को महसूस कर सकें तथा मुक्त हो सकें। स्वतंत्रता अथवा मुक्ति मानव-जीवन का एक सर्वोच्च लक्ष्य है। इस सर्वोच्च लक्ष्य की तरफ बढ़ने का प्रथम कदम यह जानना है कि पूर्णता पहले से ही हमारे भीतर है। किसी तरह हमने अपनी मूल प्रकृति को भुला दिया है तथा अपूर्णता के साथ अपनी पहचान बना ली है।

कारण :

हिन्दू गुरु हमें बताते हैं कि अज्ञान ही सारी अपूर्णताओं एवं दुःखों का मूल है। अपूर्णता एवं दुःखों के बंधन से बाहर निकलने का एकमात्र रास्ता है—ज्ञान प्राप्त करना या अज्ञानता को दूर भगाना। चूँकि ज्ञान वस्तुतः हमारे जीवन की वास्तविक प्रकृति है, हमें उसे कहीं बाहर से नहीं प्राप्त करना है, जैसे हम बाहर से कुछ वह प्राप्त करते हैं जो हमारे पास पहले से नहीं था। प्रकाश तो हमारे भीतर है,—सदा चमकता हुआ। कुछ अपारदर्शी वस्तुओं ने इसे आवृत कर डाला है। हमें सिर्फ इन वस्तुओं को हटा देना है। तब प्रकाश अपनी पूरी शक्ति से चमक उठेगा।

साधना क्या है :

हमारे दिव्य स्वभाव की प्रत्यक्ष अनुभूति इस जन्म और उसके बाद के जन्म की समस्याओं का सामाधान कर देती है। यह अनुभव सर्वप्रथम कुछ अत्यावश्यक शर्तों के रूप में कुछ विशिष्ट प्रकार के अनुशासनों का समर्थन करता है। इन्हीं अनुशासनों को साधना कहते हैं। यह ध्यान देने योग्य है कि दिव्य अनुभूति के लिए ये केवल शर्तें हैं, न कि ये स्वयं अनुभव हैं। न ही यही कहा जा सकता है कि ये अनुशासन शीघ्र दिव्य अनुभूति की तरफ सीधे अग्रसर करा देते हैं। ये हमें दिव्य अनुभूति के लिए तैयार करते हैं, लेकिन स्वयं अनुभव ईश्वरीय कृपा से ही प्राप्त होता है।

यदि दिव्य अनुभूति मात्र ईश्वरीय कृपा से ही आती है तथा अन्य किसी भांति नहीं, तो क्या इन अनुशासनों की हम उपेक्षा नहीं कर सकते? नियमतः "नहीं"। क्योंकि बिना किसी प्रारम्भिक योग्यता के दिव्य अनुभूति की प्राप्ति एक अपवाद है, और 'अपवाद' 'अपवाद' है, इसे सामान्य नियम का रूप नहीं दिया जा सकता। ये अनुशासन —जिनके पीछे दिव्य अनुभूति आती है सभी धार्मिक एवं आध्यात्मिक गुरुओं के द्वारा स्वीकृत किये गये हैं।

साधना के कार्य :

बाईबिल कहती है— "धन्य हैं पवित्र हृदय वाले, क्योंकि वे ईश्वर का दर्शन करेंगे।" (सेंट मैथ्यू : ५-८) यह ईश्वर को देखना अपने भीतर छिपी पूर्णता का ही अनुभव करना तथा मुक्त होना है। "पवित्र हृदय वाले ईश्वर को देखेंगे।" ईश्वर को देखने की मौलिक शर्त्त है—हृदय की पवित्रता। किसी तरह की सच्ची आध्यात्मिक अनुभूति हृदय के पूर्ण पवित्र हुए बिना हो ही नहीं सकती।

हृदय की अपवित्रता क्या है? मन को दो प्रकार का कहा गया है—शुद्ध और अशुद्ध। वह मन जो सांसारिक सुखों को खोजता है—अपवित्र है और सांसारिक वासनाओं से दूर ले जाने वाला मन पवित्र है।

सांसारिक सुखों के उपभोग की इच्छा इहलोक एवं परलोक में भी हृदय को अशुद्ध कर देती है। हिन्दू धर्म-गुरुओं ने समस्त सांसारिक ऐषणाओं को तीन रूपों में रखा है—(क) पुत्रैषणा (ख) वित्तैषणा तथा (ग) लोकैषणा। यानी पुत्र की इच्छा, वित्त की इच्छा एवं नाम-यश या स्वर्ग की प्राप्ति की इच्छा। हमारी सारी मांसल इच्छाएँ पुत्रैषणा के अंदर आती हैं। वित्तैषणा के तहत सम्पत्ति और स्वामित्व की इच्छाएँ आती हैं तथा नाम यश, शक्ति और पद तथा मरणोपरांत स्वर्ग-प्राप्ति की इच्छा—ये सब लोकैषणा के अंतर्गत आती हैं। यही इच्छाओं का त्रिकोण हृदय की अपवित्रता का कारण है।

संस्कार : प्रेरक बल :

"हम इस समय जो भी हैं"—विवेकानन्द कहते हैं— "वह भूतकाल में हम जो कुछ रहे हैं या हमने सोचा था, उसी का परिणाम हैं। भविष्य में हम क्या होंगे, यह इसका परिणाम होगा कि हमलोग इस समय क्या करते या सोचते हैं।"[2]

हमारे मस्तिष्क का झुकाव, उसकी रुचियाँ, आकांक्षाएँ—सब हमारे भूतकाल के विचारों एवं कर्मों के परिणाम हैं। हमने इन विचारों एवं कर्मों को भूतकाल में कई-कई बार दुहराया है। उन्होंने हमारे मनोमस्तिष्क पर गहरी छाप छोड़ी है जिन्हें संस्कार कहते हैं। यही संस्कार हमारे वर्तमान के विचारों एवं कार्यों के पीछे कार्यरत प्रबल शक्तियाँ हैं। यदि सांसारिक विचार एवं इच्छाएँ—इन्द्रिय-तुष्टि के लिए—हममें मजबूत हैं तो इसका अर्थ है कि हमने भूतकाल में उनको असंख्य बार दुहराया है। उन्होंने हमारे मस्तिष्क पर बुरे संस्कार उत्पन्न कर डाले हैं तथा इस प्रकार हमारे हृदय को दूषित कर डाला है।

शुद्धिकरण के द्विविध मार्ग :

साधना का उद्देश्य है इस दूषित हृदय को शुद्ध करना। इसके दो पक्ष हैं—ऋणात्मक एवं धनात्मक। सर्वप्रथम, हृदय को आगे पुनः प्रदूषित होने से रोकना आवश्यक है। इस प्रकार, साधना का ऋणात्मक पक्ष बताता है कि सारे सांसारिक विचार एवं स्वार्थपूर्ण कर्म पूरे हृदय से रोक दिये जाएँ।

साधना का धनात्मक पक्ष कुछ अनुशासन प्रस्तुत करता है जो हृदय को पवित्र करते हैं।

साधना के मूल गुण :

साधना 'लक्ष्य' या 'साध्य' तक पहुँचने का माध्यम है न कि स्वयं में 'लक्ष्य' या 'साध्य'। हिन्दू-दर्शन एवं धर्म के विविध मार्गों के समस्त गुरु आध्यात्मिक अनुभूतियों के लिए साधना की आवश्यकता स्वीकारते हैं। वे सब साधना के कुछ आधारभूत गुणों पर एकमत

हैं। यदि इन आधारभूत अनुशासनों का उचित रूप से एवं अति सतर्कतापूर्वक अनुसरण हो तो वे हमें ईश्वरीय कृपा की प्राप्ति के लिए सुयोग्य पात्रता प्रदान करते हैं।

अपने एक कक्षा-व्याख्यान में साधना के आधारभूत गुणों की व्याख्या करते हुए स्वामी विवेकानन्द ने कहा था—"ये तैयारियाँ हमें पवित्र एवं प्रसन्न बनाएँगी। बंधन स्वयं गिर जाएँगे तथा हम उस इन्द्रिय-तुष्टि की सतह से ऊपर उठ जाएँगे जिससे बँधे हैं और तब हम उन तमाम चीजों को देखेंगे और सुनेंगे तथा महसूस करेंगे जिनको लोग तीन सामान्य स्थितियों (जाग्रत, स्वप्न एवं सुषुप्ति) में न महसूस करते, न देखते, न सुनते हैं।"[3]

इस प्रकार हम देखते हैं कि सिद्धांततः यद्यपि साधनाएँ आध्यात्मिक अनुभूति की प्रत्यक्ष स्रोत नहीं हैं, तथापि आध्यात्मिक अनुभूति के लिए उनके महत्व एवं भूमिका को नगण्य नहीं कहा जा सकता।

शरीर का प्रशिक्षण :

मात्र मानव-योनि में ही "आत्मतत्व" को अनुभूत किया जा सकता है तथा जीव मोक्ष प्राप्त कर सकता है। मानव-व्यक्तित्व देह मन का मिश्रित रूप है। मुक्ति के इच्छुक को अपनी देह एवं मन को प्रशिक्षित करना होगा तथा मुक्ति-प्राप्ति हेतु एक सुयोग्य यंत्र बनाना होगा।

यह उक्ति कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन निवास करता है—साधना के क्षेत्र में भी पूर्णतः लागू होती है। साधना का मूल्य उद्देश्य है—हृदय की शुद्धि। यह उद्देश्य तब तक सिद्ध नहीं हो सकता जब तक शरीर सहयोग नहीं करता। शरीर उस जवान और अनसाधे घोड़े की तरह है जो सदा अपने ऊपर सवारी करने वाले को लात मारना और गिरा देना चाहता है। उत्तम सवार जो अच्छे उद्देश्य से घोड़े का उपयोग करना चाहता है, धैर्य रखता है तथा धीरे-धीरे, मगर निश्चित रूप से, घोड़े को प्रशिक्षित कर लेता है। इसी प्रकार, जब हम युवा हैं, हमारा शरीर एवं हमारी इच्छाएँ मजबूत हैं। वे हमारे नियंत्रण में नहीं हैं। इच्छाएँ हमें खींचकर वस्तु तक पहुँचा देती हैं! साधना का प्रथम कदम है—दुर्दम शरीर एवं इन्द्रियों को रोकना एवं नियन्त्रित करना।

दम :

शरीर एवं इन्द्रियों का नियंत्रण करना ही 'दम' है। यह बिना लगाम वाली बाह्य इन्द्रियों को लगाम देना और उनको आध्यात्मिक अनुभूति की तरफ मोड़ना है। यह दमन नहीं, बल्कि नियंत्रण है। दम की साधना करते समय ध्यान देना है कि अति पर न जाएँ तथा न शरीर के साथ अत्याचार करें। शरीर को अनिवार्यतः योग्य एवं स्वस्थ रहना ही चाहिए।

शम :

तदुपरांत, मन को नियंत्रित एवं प्रशिक्षित करने वाली कुछ और कठिन और लम्बे समय तक चलने वाली साधना का स्थान है। मनोनिग्रह एक पूर्ण विकसित विज्ञान है। हिन्दू योगी तथा आध्यात्मिक गुरुओं ने कई-कई जीवन इस विज्ञान के विकास हेतु अर्पित कर दिये हैं। विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों के लिए विभिन्न प्रकार के तरीकों को खोजा गया है। प्रत्येक नर-नारी ने अपनी कुछ खास मानसिक-शारीरिक बनावट प्राप्त की है। साधना शुरू करने के पूर्व इन विशिष्टताओं पर अवश्य विचार कर लेना चाहिए। व्यक्ति के उचित निरीक्षण के उपरांत ही सधना का एक अनुकूल तरीका किसी के लिए निर्धारित किया जा सकता है। पहुँचे हुए, अनुभवी गुरु ही विशेष व्यक्ति के अनुकूल विशेष प्रकार की साधना निर्धारित कर सकते हैं। लेकिन, कुछ ऐसी भी साधनाएँ हैं जो सामान्यतः प्रत्येक उच्चतर जीवन के इच्छुक व्यक्ति के लिए हैं!

मन को नियंत्रित करने की विधि का नाम है 'शम'। हमारे पूर्व के जीवन के संस्कारों के कारण मन सांसारिक सुखों की तरफ भागता है। सांसारिक सुखों को यह सदा याद करता (जिनका अनुभव उसे पहले हुआ है) तथा भविष्य के सुखों का हवाई किला बनता रहता

है। मन को इन दोनों ही स्थितियों से रोकना और उच्चतर लक्ष्य की तरफ लगाना ही "शम" है।

साधना के सामान्य नियम :

सारे हिन्दू आधात्मिक शिक्षक इस विन्दु पर एक-मत हैं कि नैतिकपूर्णता सब प्रकार की पूर्णताओं की प्राप्ति हेतु साधनाओं का मूल है।

सामान्य नैतिक सिद्धांतों को पाँच वर्गों में विभाजित कया जा सकता है (1) सत्य (2) अहिंसा (3) ब्रह्मचर्य (4) अस्तेय और (5) अपरिग्रह। सत्य या सच्चाई सिर्फ सच बोलना ही नहीं है, जैसा सामान्यत: समझा जाता है। साधक को विचार, वचन और कर्म—सर्वत्र सच्चा होना पड़ेगा। हमारे विचार, हमारे वचन और हमारे कर्म—एक दूसरे का निश्चित रूप से अनुकरण करें।

किसी जीवित प्राणी को घायल नहीं करना अहिंसा है। धनात्मक रूप से, यह सारे प्राणियों के प्रति आदर का भाव है। वस्तुत: तो किसी प्राणी के भावों को, वचन या कर्म से चोट पहुँचाना ही हिंसा है। अहिंसा की उचित साधना के लिए साधक को सिर्फ दूसरों के जीवन का ही नहीं, बल्कि दूसरों की भावनाओं का भी आदर करना चाहिए। समस्त प्राणियों के लिए निःस्वार्थ प्रेम—यह भी अहिंसा के अंतर्गत है। ब्रह्मचर्य, जिसे प्राय: यौन-आवेगों के दमन के अर्थ में ग्रहण किया जाता है—यौन-भूख के नियंत्रण तक ही सीमित नहीं है। इसके अतिरिक्त यह मस्तिष्क की समस्त संवेदनाओं एवं आवेगों का नियंत्रण तथा पूर्णता की प्राप्ति के उच्चतर लक्ष्य की तरफ उनको मोड़ना भी इसमें निहित है। अस्तेय का अर्थ है चोरी नहीं करना। कोई भी चीज जो हमारी नहीं है, उसे उसके मालिक की अनुमति के बिना लेना चोरी है। इस कार्य से बचना ही अस्तेय है। पर नैतिक दृष्टिकोण से, अपनी आवश्यकता से ज्यादा किसी भी वस्तु को लेना—भले उसके स्वामी की सहमति ही क्यों न मिली हो—चोरी है। इस तरह, अस्तेय का अर्थ हुआ—हर प्रकार की उस वस्तु से परहेज जिसकी हमें जरूरत नहीं है। अपरिग्रह का अर्थ है—असंचय। इसका मतलब गरीबी नहीं होता। एक भिखारी अपरि-ग्रह का साधक नहीं है क्योंकि यद्यपि उसने अधिक संचय नहीं किया है तो भी उसने संचय की प्रकृति को छोड़ नहीं दिया है। अपरिग्रह का अर्थ है—स्वामित्व की इच्छा का त्याग तथा शारीरिक एवं मानसिक जरू-रत भर कम से कम रखना।

ये सारे नैतिक गुण वस्तुत: कोई निश्चित आकार-प्रकार की वस्तुएँ नहीं हैं जिनकी अलग-अलग साधना की जा सके। ये सब एक दूसरे के साथ आंतरिक रूप से गुंथे और शृंखलाबद्ध हैं। एक गुण की साधना अन्य साधना का मार्ग प्रशस्त करती है। इसी प्रकार, किसी एक साधना में हुई असावधानी या उपेक्षा दूसरी साधना में बाधा खड़ी कर देती है। यह देखा जा सकता है कि शम और दम—जिसके अंतर्गत ये सारे गुण आते हैं—एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इसीलिए, चित्त की शुद्धि के लिए उसकी साधना एक साथ करनी चाहिए।

वस्तुत: शम और दम की यह साधना जीवन जीने का एक मार्ग है। यह संभव नहीं कि हम सुखद सांसा-रिक जीवन जिएँ एवं साथ ही जीवन की पूर्णता के लिए शम और दम की साधना भी करें। योग और भोग साथ नहीं चल सकते। "विवेक चूड़ामणि" में आचार्य शंकर कहते हैं—'जो भी शरीर को आराम देते हुए आत्मतत्व की अनुभूति प्राप्त करना चाहता है, वह उस व्यक्ति की तरह है जो नदी पार करने के लिए घड़ियाल की पीठ को गलती से लकड़ी का कुन्दा मानकर पकड़ लेता है।"[4]

साधना मात्र तभी शुरू हो सकती है जब कोई व्यक्ति निश्चयपूर्वक एक महान् उद्देश्य के हेतु सम-र्पित होने का निर्णय कर लेता है। कोई भी महत् वस्तु जीवन के सामान्य मार्ग से चलकर प्राप्त नहीं की जा सकती है। महान् उपलब्धि महान् बलिदान खोजती है। पूर्णता प्राप्त करने के इच्छुक साधक को अपने जीवन को साधना के उस मार्ग की तरफ मोड़ना होगा जिसे विश्व के आधात्मिक गुरुओं ने निर्धारित किया है।

"भक्ति-योग" संबंधी अपने उपदेश में स्वामी विवेकानन्द घोषणा करते हैं—"हर आत्मा की नियति है पूर्ण होना तथा प्रत्येक प्राणी इस स्थिति को अंततः प्राप्त करेगा।"[5]

पूर्णता की प्राप्ति हमारे चुनाव पर निर्भर नहीं। हमें इसे प्राप्त करना होगा, यदि इस जीवन में नहीं, तो अगले हजारों जन्मों में ही संभव हो। प्रकृति हमें दुःख सुख के असंख्य अनुभवों से असंख्य बार गुजरने को बाध्य करेगी, तबतक, जबतक अंततः हम सचेतन न हो जाएँ और महसूस न करें कि सुख एवं दुःख के हाथों का खिलौना बनना ही हमारी नियति नहीं है। हमारी नियति है दुःख एवं सुख के ऊपर उठना और उससे पूर्णतः मुक्त हो जाना। जब इस तरह के उच्च विचारों का प्रभात हम में उतरेगा, तब हम अपने जीवन-पथ में सुधार करेंगे जो अंततः हमें पूर्णता की प्राप्ति की ओर ले जाएगा।

लेकिन, हम इतने लम्बे समय की प्रतीक्षा क्यों करें? तथा अपना पक्ष सुधारने के पहले बारम्बार प्रकृति के घात क्यों झेलें? जिसे हम महान् दबावों के द्वारा हजारों जन्मों के बाद भी करने को बाध्य किये जाएँगें, उस कार्य को यहीं और इसी क्षण हम स्वेच्छा पूर्वक क्यों नहीं शुरू कर दें?

अतः, यदि हम स्वेच्छया इसी क्षण अपनी साधना शुरू कर देते हैं, तो इससे एक महान अन्तर होगा। यह असंख्य दुःखों एवं सुखों के असंख्य अनुभवों से गुजरने से हमारी रक्षा करेगा। और यदि हम पूर्ण निष्ठवान् हैं तो हम स्वयं दिव्य आत्मा से निर्देश प्राप्त कर सकते हैं तथा इसी जीवन में इस ससार-सागर से पार जा सकते हैं।

1. कम्पलीट वर्क्स ऑफ स्वामी विवेकानन्द, वाल्यूम II, पेज 502 (13वां संस्करण)
2. कम्पलीट वर्क्स— वाल्यूम IV, पेज 21.
3. कम्पलीट वर्क्स— वाल्यूम I, पेज 416.
4. विवेक चूड़ामणि—82. 5. कम्पलीट वर्क्स—वाल्यूम IV, पेज 21.

●

भारत तभी जगेगा जब विशाल हृदय वाले सैकड़ों स्त्री-पुरुष भोग-विलास और सुख की सभी इच्छाओं को विसर्जित कर मन, वचन और शरीर से उन करोड़ों भारतीयों के कल्याण के लिए सचेष्ट होंगे जो दरिद्रता तथा मूर्खता के अगाध सागर में निरन्तर नीचे डूबते जा रहे हैं।

—स्वामी विवेकानन्द

(वि० सा० ६, ३०७)

राष्ट्रीय एकात्मता के प्रतीक—स्वामी रंगनाथानन्द

—डा० एच० नरसिम्हैया

स्वामी रंगनाथानन्दजी से मेरा प्रथम संपर्क अब से ठीक पचास साल पहले हुआ था। १९३६ में मैं बेंगलूर के नेशनल हाईस्कूल में नवीं कक्षा का छात्र था। इस स्कूल की कई विशेषताएँ थीं। उनमें से एक थी धर्मशिक्षा। एक दिन जब हमारे प्रधानाध्यापक ने एलान किया कि रामकृष्ण मिशन के स्वामी रंगनाथानन्द जी धर्मशिक्षा की कक्षाएँ लिया करेंगे, हम लोगों में कुछ सनसनी-सी फैली थी।

श्रीरामकृष्ण आश्रम हमारे स्कूल से सिर्फ आधा किलोमीटर दूर था। चूँकि हमारा स्कूल राष्ट्रीयता, सेवा और त्याग के आदर्शों को लेकर स्थापित किया गया था, इसलिए उसमें और मठ में आत्मीय संबंध था। स्कूल के बहुत से छात्र और अध्यापक आश्रम द्वारा संचालित विभिन्न कार्यक्रमों में भाग लिया करते थे।

उन्होंने बी. आर. चिन्मयानन्द का नाम लिया और उस लड़के ने अपनी हाजिरी दी। स्वामीजी को वह नाम बहुत अच्छा लगा और वे उस नाम का महत्व समझाने लगे। उन्होंने बताया कि वह नाम "चित्", "मय" और "आनन्द" शब्दों के मिलने से बना है। बहुत ही सरल शब्दों में उन्होंने प्रत्येक शब्द का अर्थ बताया। यही समझिए कि इस नाम के बारे में उस दिन उनका प्रवचन हुआ और कक्षा का पूरा समय उस में लग गया। हम सब उनके प्रवचन से बहुत प्रभावित हुए, भले ही पूरी बात हमारी समझ में न आयी हो।

स्वामी रंगनाथानन्द अनेक दृष्टियों से विलक्षण संन्यासी हैं। बड़े विद्वान हैं वे—बहुपठित और बहुश्रुत। विज्ञान, वैज्ञानिक मनोवृत्ति और वैज्ञानिक पद्धति का वे स्वागत करते हैं। वे मानते हैं कि धर्म के क्षेत्र में भी सत्य की खोज के लिए सशक्त वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग किया जाना चाहिये। अगर किसी मामले में विज्ञान और धर्म की खोजों में परस्पर विरोध हो तो वे विज्ञान की खोजों को तरजीह देंगे। विज्ञान की अनेक शाखाओं की

(स्वामी रंगनाथानन्दजी का जन्म १५ दिसम्बर १९०८ को केरल में त्रिचूर के समीप त्रिक्कूर नामक गाँव में हुआ था। उनका पूर्वाश्रम का नाम शंकरन् था। विद्यार्थी-अवस्था में ही वे रामकृष्ण और विवेकानन्द के विचारों के प्रभाव में आये और १९२६ में उन्होंने रामकृष्ण मठ में प्रवेश किया। १९३३ में उन्होंने स्वामी शिवानन्दजी महाराज से संन्यास-दीक्षा पायी। उन्होंने बेंगलूर और रंगून के रामकृष्ण मठों में कार्य किया। फिर वे करांची और दिल्ली के मठों के अध्यक्ष रहे। इस समय वे रामकृष्ण मठ, हैदराबाद के अध्यक्ष हैं।)

पहले दिन स्वामी जी ने हमारी जो कक्षा ली, वह मुझे आज भी चित्रवत् याद है। वे कक्षा में आये और उन्होंने सबसे पहले हाजिरी ली। रजिस्टर में अक्षर-क्रम से दर्ज दो-तीन नाम बोलने के बाद

और विशेषत: जीवशास्त्र और मनोविज्ञान की नवीनतम प्रगति के संभावित अर्थ और परिणामों को वे काफी अच्छी तरह समझते हैं।

बहुत मिलनसार स्नेहशील, खुशमिजाज और सौम्य हैं वे। मैंने उन्हें कभी कठोर मुखमुद्रा में नहीं देखा। वे आश्रम के छात्रों-भक्तों के साथ वाली-बाल खेला करते थे। बहुत से संन्यासी, जैसा कि हम सभी जानते हैं, लोगों के लिए अभिगम्य नहीं होते और चेले-चाटों से घिरे रहते हैं। वे अपने को धरती के बजाय स्वर्ग के अधिक नजदीक समझते हैं। मगर स्वामी रंगनाथानन्द आम लोगों और युवकों से खुलकर मिलते और चुपचाप उनके दृष्टिकोण को बदलने को कोशिश करते। उनके व्यक्तित्व और प्रभाव की जोरदार छाप पड़ती। इसी का यह परिणाम था कि नेशनल हाईस्कूल के कुछ छात्र रामकृष्ण आश्रम में भरती हो गये। स्वामीजी की यह सफलता मामूली नहीं थी। जहाँ तक मैं जानता हूँ, किसी और संन्यासी ने युवकों पर उतना प्रभाव नहीं डाला है, जितना कि स्वामी रंगनाथानन्दजी ने डाला है। सचमुच वे मित्र, सलाहकार और पथदर्शक का काम करते हैं।

नेशनल हाई स्कूल का विद्यार्थी और उसके निर्धन विद्यार्थीगृह का निवासी होने के नाते १९३५ से ही मेरा रामकृष्ण आश्रम से निकट संपर्क था। यही नहीं, भौतिकी में आनर्स और एम. एस-सी. की पढ़ाई करते हुए १९४४ से १९४६ तक दो साल मैं आश्रम में ही रहा। उपाधि पाते ही मैं नेशनल कालेज में लेक्चरर नियुक्त हो गया और उसके छात्रावास में रहने लगा। कालेज और उसका छात्रावास हाई स्कूल के ही अहाते में थे। अनगिनत बार मैंने आश्रम में और अन्यत्र स्वामीजी के भाषण सुने हैं। नेशनल कालेज का प्राचार्य रहते हुए बहुत बार मैंने उन्हें छात्रों को संबोधित करने के लिए निमंत्रित किया।

जब मैं बेंगलूर विश्वविद्यालय का उपकुलपति था, स्वामी जी ने १९७४ में उसका दीक्षांत-भाषण दिया। यह स्वामी जी की ऊंची हैसियत और उदार दृष्टि का प्रमाण है कि हालांकि वे एक विशिष्ट धार्मिक मठ से संबद्ध हैं, फिर भी दीक्षांत-भाषण के लिए जब मैंने उनके नाम का प्रस्ताव किया तो विश्वविद्यालय के सभी निकायों ने सर्वसम्मति से उसका समर्थन किया। वह दीक्षांत-समारोह बड़ा स्मरणीय रहा और हजारों छात्रों तथा आम श्रोताओं ने बड़े ध्यान से स्वामी जी का प्रवचन सुना।

पिछले साल आश्रम में कठोपनिषद् पर स्वामीजी के तीन प्रवचन हुए। मृत्यु के बाद का जीवन इस उपनिषद् का मुख्य विषय है। चालीस साल से ज्यादा समय से यह बात जानने में मेरी गहरी दिलचस्पी है कि क्या मृत्यु के बाद भी कुछ शेष रहता है? इसे मैं बुनियादी प्रश्न मानता हूँ—ईश्वर के अनस्तित्व से भी अधिक महत्वपूर्ण। इस विषय पर मैंने काफी कुछ पढ़ा है। मगर मेरी जानकारी में, किसी भी किताब ने पुनर्जन्म के बारे में तसल्लीदेह और तर्कसम्मत व्याख्या नहीं प्रस्तुत की है।

मृत्यु के बाद आत्मा के अस्तित्व के बारे में यम के उपदेश पर स्वामीजी के ये प्रवचन मैंने ध्यान से सुने। स्वामीजी ने सारी बातें बुद्धिवादी ढंग से रखने की यथाशक्ति कोशिश की। शायद यम से भी अधिक तर्कसंगत होने का प्रयास उन्होंने किया था। प्रवचन के बाद मैंने निजी रूप में उनसे बातचीत की और कहा कि यम की व्याख्याएँ अस्पष्ट, टरकाऊ और अतृप्तिकर हैं। स्वामीजी मुस्कुराये और बोले कि ऐसे विषयों में इससे ज्यादा बुद्धिवादी होना कठिन है और हमें खालिस वैज्ञानिक सैद्धांतिक प्रामाण या प्रात्यक्षिक की आशा नहीं करनी चाहिए।

आज हमारा देश अनेक गंभीर समस्याओं से आक्रांत है। धार्मिक कट्टरता, जातिवादी, संकीर्ण भाषाभक्ति देश को तोड़ने वाली मुख्य शक्तियाँ हैं। धर्म का राजनीति के साथ घालमेल बहुत खतरनाक और विस्फोटक तत्व बन गया है। इन समस्याओं को समझने

के लिए बुद्धिवादी और वैज्ञानिक रुख अपनाना आवश्यक है। हमारा संविधान धर्मनिरपेक्ष है। मेरी राय में, धर्मनिरपेक्षेपता का मतलब सब धर्मों का समान आदर नहीं है, बल्कि उसका अर्थ सब धर्मों की समान रूप से उपेक्षा है। धार्मिक मामलों में सरकार को वस्तुतः और पूरी तरह तटस्थ वृत्ति अपनानी चाहिए। आखिर, धर्म व्यक्ति का सरासर निजी मामला है और संविधान हर एक को अपने धर्म का अनुकरण करने की स्वतंत्रता देता है। मगर प्रत्येक को देशभक्त भारतीय के रूप में बरताव करना होगा। स्वामीजी की ओजस्वी वाणी ने लोगों को सदा यह समझाया है कि हमारे देशवासियों को सर्वप्रथम अपने को भारतीय समझना चाहिए और भारत की विरासत और संस्कृति का अभिमान करना चाहिए।

देशभक्ति, राष्ट्रवाद, भ्रातृत्व, निष्काम सेवा एवं सच्चरित्रता—इन बुनियादी मूल्यों पर स्वामीजी ने सदा जोर दिया है। वे सदा ही धर्म के मूलतत्व की बात करते हैं, जिसे वे "धर्म का विज्ञान" कहना पसंद करते हैं। उनकी दृष्टि सदा विश्वजनीन रही है और वे ज्यादातर धर्म के नैतिक और सदाचरण-परक पहलुओं की चर्चा किया करते हैं। अपने प्रवचनों में ईश्वर का उल्लेख वे विरले ही करते हैं। उनका ज्यादा जोर मानवीय धर्म पर रहता है, न कि ईश्वरीय धर्म पर।

उन्होंने साम्यवादी देशों समेत सारी दुनिया की कई बार यात्रा की है। चाहे वे न्यूयार्क में बोल रहे हों या मास्को में, सब जगह श्रोताओं के साथ उनका तादात्म्य हो जाता है। सभी देशों में उनके श्रोता भी उनके साथ ऐसा ही तादात्म्य अनुभव करते हैं।

आज जबकि विभाजक तत्व और केन्द्रापगामी प्रवृत्तियां देश के लिए खतरा बन गयी हैं, देश की एकता की रक्षा अत्यंत आवश्यक हो उठी है। स्वामीजी इस ध्येय के लिए निष्ठापूर्वक और समर्पण-भाव से कार्य करते रहे हैं। सभी जानते हैं कि उनका अपना कोई स्वार्थ नहीं है। यही उनकी सबसे बड़ी शक्ति है। पिछले पचास से अधिक वर्षों से वे शांति, सद्भाव और एकता का प्रचार अथक भाव से कर रहे हैं। उनके लिए मानवता ही भगवान है। अनेक ग्रंथ और लेख उन्होंने लिखे हैं, जिनमें से दो विशिष्ट पुस्तकें-"दि मेसेज ऑफ ट्रुथ" और "इटर्नल वैल्यूज फॉर ए चेंजिग सोसायटी" सबको पढ़नी चाहिए।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय एकात्मकता पुरस्कार स्वीकार करके स्वामी रंगनाथानन्दजी ने श्रीमती इंदिरा गांधी की महान शहादत और इस पुरस्कार के उद्देश्य दोनों का सम्मान बढ़ाया है। (प्रे.ट्र. फीचर)

मनुष्य का बल व ज्ञान या तो ध्वंसात्मक होता है अथवा रचनात्मक। वे उसे तथा अन्य लोगों को जीवन और प्रेम तथा आनन्द और शान्ति दे सकते हैं, अथवा मृत्यु तथा घृणा, दुःख व निराशा प्रदान कर सकते हैं। एक आदमी इन दोनों में से किसे चुनेगा यह मुख्यतः उसके आध्यात्मिक विकास व चेतना के स्तर पर और गौणतः उसकी आर्थिक व सामाजिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है। आज यह बात स्पष्ट हो गयी है कि आर्थिक दृष्टि से अति उन्नत देश पागलपन, अकेलापन और अपराधों से बच नहीं सकते, वरन् उनमें वृद्धि ही करते हैं,……तथापि भारत के अनुभव ने यह दर्शाया है कि यह आवश्यक नहीं कि गरीबी और अपराध सदा साथ-साथ चलें तथा आर्थिक दरिद्रता का अर्थ सर्वदा हृदय की दरिद्रता हो।

— स्वामी रंगनाथानन्द

क्रिया-योग--साधना की पूर्व तैयारी

स्वामी ब्रह्मेशानन्द
रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

आध्यात्मिक जीवन एक संग्राम है। काम क्रोध, लोभादि आन्तरिक रिपुओं पर विजय प्राप्त करना बाहरी शत्रु को जीतने से कहीं अधिक कठिन है। इसलिए आत्मजयी ब्रह्मज्ञानी को "महावीर" 'जिन' आदि नामों से पुकारा जाता है। बाह्य युद्ध की तरह आन्तरिक युद्ध के लिए भी समुचित तैयारी की आवश्यकता है! उसके अपने नियम योजनाएँ एवं व्यूह आदि हैं। इन्हें जाने बिना तथा बिना तैयारी के आन्तरिक युद्ध में प्रवृत्त होने पर पराजय अवश्यंभावी है। सत्य तो यह है कि हजारों लाखों साधक योद्धाओं में से बिरले ही इसमें विजयी होते हैं। लेकिन पराजय के भय से इसमें प्रवृत्त न होना समस्या का समाधान नहीं है। उल्टे, हमें तो और अधिक उत्साह, संकल्प एवं पूरी तैयारी के साथ काम क्रोधादि रिपुओं को जीतने के लिए कटिबद्ध हो जाना चाहिए।

आध्यात्मिक संग्राम के प्रारंभ के पूर्व ही हमें सर्वप्रथम अपनी शक्ति का अंकन कर लेना चाहिए। क्या हममें इस दीर्घ संघर्ष की पर्याप्त क्षमता है? हमारी यह इच्छा क्षणिक आवेग मात्र तो नहीं हैं! हमारे शत्रु कितने प्रबल हैं? क्या उनका सामना किया जा सकता है? अथवा क्या उनकी शक्ति को किसी उपाय से क्षीण करना संभव है? इन विभिन्न प्रश्नों का किसी न किसी रूप में उत्तर प्रत्येक योद्धा को युद्ध के प्रारम्भ में ही प्राप्त कर लेना चाहिए।

सभी शास्त्रों एवं साधना पद्धतियों में इन प्रारम्भिक प्रश्नों पर गम्भीरता से विचार कर कुछ महत्वपूर्ण सिद्धांत खोज निकाले गये हैं। कोई भी साधन पद्धति, अचानक बिना तैयारी के साधना में कूद पड़ने को प्रोत्साहित नहीं करती। साधक को धीरे-धीरे कठिनतर आन्तरिक संघर्ष के लिए तैयार करने की योजना हम सभी साधनाओं में पाते हैं। पातंजल योगसूत्र में इसे 'क्रिया-योग' का नाम दिया गया है, जिसके तीन अंग हैं: तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर प्रणिधान।

तप का उद्देश्य शरीर एवं मन को एक समतापूर्ण सुसंतुलित स्थिति में लाना है; जिससे वे अपनी श्रेष्ठतम एवं पूर्णतम क्षमता के अनुसार कार्य कर सकें। जिस प्रकार उच्छृंखल घोड़े को नियंत्रित एवं प्रशिक्षित कर महत् कार्य में लगाया जा सकता है, जिस प्रकार वाद्य के तार को ठीक तरह से खींचकर—जिससे वह न अत्यधिक ढीला और न अधिक तना हुआ हो—मधुर संगीत पैदा किया जा सकता है, उसी प्रकार शरीर एवं मन को मानो कसकर साधनोपयोगी बनाने का कार्य तप द्वारा किया जाता है।

स्वाध्याय हमारे मन को साधनोन्मुखी करता है। जिस प्रकार के विचारों से हम अपने मन को भरेंगे उसी प्रकार के कर्मों में हम शरीर एवं मन को प्रवृत्त करेंगे। अतः आध्यात्मिक उद्देश्य एवं साधना के प्रति रुचि पैदा करने के लिए स्वाध्याय अत्यन्त आवश्यक है। इससे संशय विपर्ययादि बाधाएँ दूर हो जाती हैं।

ईश्वर प्रणिधान अथवा ईश्वर के प्रति कर्मफल-समर्पण का अभ्यास साधना के मानसिक तनाव को को बहुत हद तक दूर कर देता है। आध्यात्मिक जीवन में यह आवश्यक नहीं कि हमेशा सफलता ही प्राप्त हो असफलता के क्षणों में शरणागति का भाव

साधक को हताश होने से बचाता है। तप, स्वाध्याय एवं ईश्वरप्रणिधान क्रमशः साधक के क्रियात्मक, ज्ञानात्मक एवं भावनात्मक पक्ष को साधनोपयोगी बना देते हैं। ये तीनों क्रिया योग के अंग एवं साधना की प्रारंभिक सीढ़ियाँ होते हुए भी इनमें से प्रत्येक अपने आप में एक एक साधन भी है। ऐसा नहीं है कि इनकी साधना करने के बाद अन्य साधनाओं में प्रवृत्त होने पर इन्हें त्याग दिया जाता है। वस्तुतः तप, स्वाध्याय एवं ईश्वर प्रणिधान जीवन पद्धतियां हैं—जीवन के अभिन्न अंग हैं। और यदि कोई व्यक्ति अपने जीवन को तपोमय, नित्य स्वाध्यायी एवं सतत शरणागत बना ले तो यह अपने आप में उसकी एक महती उपलब्धि होगी।

तप

विश्व के प्रमुख धर्मों में तप को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। जैन धर्म जैसे कुछ धर्म तो तप-प्रधान कहे जा सकते हैं। और फिर प्रत्येक धर्म ने मीलारेपा, असिसि के सन्त फ्रांसिस, राबिया, तीर्थंकर महावीर आदि महान तपस्वी सन्तों को जन्म दिया है। वस्तुतः यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि धर्म के इतिहास में बिरले ही कोई सन्त होगा जो तपस्वी न हो।

तप का अर्थ एवं प्रकार—लेकिन आखिर तप है क्या? सामान्यतः तप शब्द लोगों के मन में शारीरिक क्लेशदायक दीर्घ उपवास, रात्रि-जागरण आदि कठोर साधना की ही कल्पना जगाता है। आधुनिक विचारापन्न लोग ऐसी साधना को अस्वाभाविक समझकर तप की निन्दा करते हैं। लेकिन ये दोनों अतियाँ तप के सम्बन्ध में भ्रान्त धारणा के कारण हैं। तप शब्द के अग्नि, उष्णता, तेज, शक्ति आदि अर्थ शब्दकोष में पाये जाते हैं। लेकिन यह शब्द तपाना, ताप सहन करना एवं ताप उत्पन्न करना इन तीन अर्थों में भी प्रयुक्त हो सकता है। जिस प्रकार सोने को तपाने से उसका मल दूर होकर उज्ज्वल वर्ण निखर उठता है, उसी प्रकार तप के द्वारा चित्त-मल विदूरित होता है। अनादि क्लेश एवं कर्मों से उत्पन्न विषयासक्ति रूपी मल बिना तपस्या के दूर नहीं हो सकता। शारीरिक एवं मानसिक सभी प्रकार के कष्टों को सहन करना भी तप है। सहज रूप से कष्टों के उपस्थित होने पर उन्हें चिन्ता विलाप आदि के बिना सहन करना तितिक्षा कहलाता है। लेकिन स्वेच्छा से क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्णता आदि कष्ट पैदा कर उन्हें सहन करने को तप की संज्ञा दी जा सकती है।

दो मुख्य प्रकार के तप—जिसके द्वारा अग्नि, तेज शक्ति या उष्णता उत्पन्न हो उसे भी तप कहते हैं और यही अन्तिम अर्थ तप के स्वरूप को समझने के लिए सबसे उपयुक्त है। तप मानो उस जल-चालित डाइनमो की तरह है, जिसके द्वारा जल-प्रवाह-शक्ति को विद्युत के रूप में उत्पन्न किया जाता है। हमारे शरीर और मन की शक्तियां अनेक दिशाओं में व्यर्थ व्यय होती हैं। उन्हें एकाग्र एवं केन्द्रित करने का कार्य तप द्वारा होता है।

एक दूसरी प्रक्रिया से भी अग्नि उत्पन्न की जाती है—घर्षण के द्वारा। जैसे दो चकमक के पत्थर एक दूसरे पर घिसे जाते हैं; अथवा यज्ञ में दो लकड़ियों को एक दूसरे से घिसने से, अथवा माचिस की तीली को उसकी खुरदुरी सतह पर घिसने से अग्नि पैदा होती है, उसी प्रकार मानसिक शक्ति की उत्पत्ति भी दो विपरीत विचारों के परस्पर-घात प्रतिघात से हो सकती है।

शक्ति उत्पादन की इन दो प्रक्रियाओं के अनुरूप तप भी दो प्रकार के हो सकते हैं। प्रथम वे तप जिनमें शरीर एवं मन का संयम प्रधान है, तथा ऐसे तप जिनमें संघर्षण का प्राधान्य है। अधिकांश तप संयम प्रधान होते हैं, लेकिन उपनिषदों में हमें संघर्षणात्मक तप का उल्लेख मिलता है। उन्हें ज्ञानमय तप भी कहा जाता है। भृगु अपने पिता वरुण के पास जाकर ब्रह्म के बारे में जिज्ञासा करते हैं। उत्तर में वरुण उन्हें तप करने के लिए कहते हैं। इस तप के फलस्वरूप वे क्रमशः

ब्रह्म को जानने में समर्थ होते हैं। इस प्रसंग में इसका उल्लेख नहीं पाया जाता है कि उन्होंने कौन सा तप किया। लेकिन यह स्पष्ट है कि उनका तप विचार-प्रधान एकनिष्ठ गहन चिन्तनपरक था जिसके द्वारा वे अपने मन का ही मंथनकर तत्व का साक्षात्कार कर सके थे।

इन दो प्रकार के तपों को मोटे रूप में बाह्य और आन्तरिक तप की भी संज्ञा दी जा सकती है। शारीरिक कृच्छ्र साधन एवं इन्द्रिय दमन बाह्य तप के अन्तर्गत आते हैं। लेकिन सभी धर्मों में मनः संयम को भी आन्तरिक तप के रूप में स्वीकार किया गया है। गीता में कायिक, वाचिक एवं मानसिक तीन प्रकार के तप वर्णित हैं। यह तो स्पष्ट ही है कि मानसिक तप बाह्य तप से अधिक महत्व-पूर्ण है, लेकिन बाह्य तप का भी अपना विशेष महत्व है, जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

तप की प्रेरणाएँ—वह कौन-सी प्रेरणा, कौन-सा आवेग, कौन-सा कारण है, जो महापुरुषों एवं सन्तों को ऐसे कठोर तप करने को प्रेरित करता है? महान सन्तों के जीवन का अध्ययन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि संसार के बन्धन से मुक्त होने की उनकी तीव्र इच्छा एवं व्याकुलता, कुछ को कठोर साधना में प्रवृत करती है, तो कुछ लोग भगवत् प्रेम से प्रेरित हो ऐसा करते हैं। उन्हें शरीर एवं इन्द्रियाँ मुक्ति के मार्ग में अपने सबसे प्रबल शत्रु प्रतीत होती हैं एवं उन्हें तप द्वारा दमन करना आवश्यक प्रतीत होता है। एक सूफी सन्त अपने शरीर को दण्ड देने के लिए के लिए उल्टे लटके हुए उसे संबोधित करते हुए कह रहे थे कि जब तक तू भगवत्-चिन्तन में मेरा सहायक नहीं होगा तब तक मैं इसी प्रकार तुझे कष्ट दूंगा। ईसा मसीह ने चालीस दिन तक उपवास किया था। उनके भक्त असिसि के संत फ्रांसिस फिर भला स्वयं अपने प्रियतम का अनुसरण कर चालीस दिन तक भूखे रहे बिना कैसे रह सकते थे? माँ सारदा ने श्रीरामकृष्ण के लीला-संवरण से उत्पन्न तीव्र विरह वेदना एवं आन्तरिक ज्वाला को शान्त करने के लिए 'पंच तपा' किया था। इन कतिपय दृष्टान्तों से यह स्पष्ट होता है कि तप आध्यात्मिक जीवन का एक अनिवार्य एवं स्वाभाविक अंग है।

तप का मनोविज्ञान एवं प्रयोजन—तप को मानव में अन्तर्निहित पशुत्व पर विजय के प्रयत्न के रूप में भी लिया जा सकता है। आहार, निद्रा, मैथुन और भय ये चार मानव एवं पशु में समान रूप से विद्यमान रहते हैं। **"आहारनिद्रा-भयमैथुनश्च समानमेतत्पशुभिर्नराणाम्।"** अधिकांश प्रचलित तप आहार नियमन, रात्रि-जागरण एवं इन्द्रिय-संयम से सम्बन्धित होते हैं, जिनका उद्देश्य मानव की स्वाभाविक (Physiological) एवं मूलभूत आवश्यकताओं का नियमन है। मानव प्रकृति पर विजय प्राप्त करना चाहता है, और अन्तः-प्रकृति के नियमन में अग्रसर होने पर उन्हें सबसे पहले इन प्राकृतिक प्रवृत्तियों का ही सामना करना पड़ता है। संत् साहित्य में, महापुरुषों की जीवनियों का अवलोकन करने पर हम उनकी निद्राजय, दीर्घ उपवास एवं इन्द्रिय-संयम के कठोर प्रयत्न के अद्भुत अमानवीय प्रयत्नों का वर्णन पाते हैं।

तप इच्छाशक्ति की वृद्धि का भी एक सर्वविदित एवं सर्वमान्य उपाय है। स्वेच्छापूवक शारीरिक कष्ट सहन करने में पर्याप्त मनोबल की आवश्यकता पड़ती है। बार-बार तप का अभ्यास करने पर यह मनोबल बढ़ता है। इसका उपयोग यथा समय सूक्ष्म आध्यात्मिक संघर्ष के लिए किया जा सकता है।

जैसा कि प्रारंभ में कहा जा चुका है, तप क्रिया-योग का एक अग है। अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष एवं अभिनिवेश ये पांच योग शास्त्र के अनुसार क्लेश कहे जाते हैं। क्रिया योग से ये क्लेश क्षीण अथवा तनु होते हैं। **"क्लेश तनु करणार्थः समाधि भावनातश्च।"** महर्षि पतंजलि के अनुसार इन क्लेशों को कम करने, एवं चित्त की एकाग्रता की वृद्धि कर समाधिलाभ करने में क्रिया-योग से सहायता मिलती है। हम शरीर द्वारा दिन प्रतिदिन एक विशेष प्रकार की क्रिया एवं मन

द्वारा एक विशेष प्रकार का चिन्तन करने के अभ्यस्त हो जाते हैं। तप के द्वारा यह अभ्यास, या आदत टूटती है। हमारे क्लेशों, एवं पशु सम प्रवृत्तियों, आहार निद्रा, मैथुन आदि की जड़ें अत्यन्त गहरी हैं। इनके बाह्य रूप एवं अभिव्यक्ति को तप द्वारा नियंत्रित करने का प्रयास करने से इनके सूक्ष्म मानसिक रूप जो अब तक छिपे थे, प्रकट हो जाते हैं। इस तरह हम इन्हें भी नियंत्रित एवं अन्त में पूरी तरह उखाड़ फेंकने में समर्थ होते हैं।

तप विषयक कुछ व्यावहारिक सुझाव

तप का स्वरूप एवं मनोविज्ञान समझने के बाद अब उसके व्यावहारिक पक्ष पर हम विचार करें। इस संक्षिप्त लेख में विभिन्न धर्मों में प्रचलित सभी तपों का विस्तृत विवेचन संभव नहीं है। यहां कुछ तपों के सिद्धांत, महत्व एवं अनुष्ठान-प्रणालियों का संकेत मात्र किया जा रहा है। अधिक जानकारी के लिए पाठकों को गीता, भागवतादि शास्त्रों का अध्ययन करना चाहिए।

तितिक्षा—जैसा कि कहा जा चुका है, तितिक्षा तप की पूर्व भूमिका है। प्रतिदिन हमें अनेक छोटे बड़े शारीरिक एवं मानसिक कष्ट सहने पड़ते हैं। चाहे कैसा भी वैभवशाली व्यक्ति ही क्यों न हो, वह इनसे अछूता नहीं रह सकता। इसीलिए भगवान ने गीता में अर्जुन को शीतोष्णादि द्वारा उत्पन्न दुःखों को सहन करने का उपदेश दिया है—

> **मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्ण सुख दुःखदाः।**
> **आगमापायिनोऽनित्याः त्वांस्तितिक्षस्व भारत॥**

यदि किसी दिन बस में बैठने की जगह न हो और खड़े-खड़े ही यात्रा करनी पड़े, गर्मी के दिन में बिजली न हो और पंखा बन्द हो जाय, भोजन में नमक अधिक पड़ गया हो, पड़ोस में कोई रेडियो बहुत जोर से बज रहा हो, तो इनको बिना व्यग्र, उद्विग्न हुए अथवा इनके प्रतीकार का प्रयत्न किये बिना सहन करना चाहिए। इन भौतिक असुविधाओं के अतिरिक्त कुछ मानसिक दुःख कष्ट भी हैं। कोई ताना कस दे, हमारा मित्र हमारी बात न मानकर विरोध करे, लोग अपमानित करें तो हम इन्हें शान्त भाव से सहन कर लें। लौकिक, सांसारिक दृष्टि से प्रतीकार करना भले ही युक्तिसंगत प्रतीत हो, लेकिन आध्यात्मिक पथ के पथिक साधक के लिए सहनशीलता परमावश्यक है।

सहिष्णुता के अभ्यास में परिपक्व होने पर साधक तप की ओर बढ़ता है। कभी-कभी कुछ साधकों में तप एवं सहिष्णुता में विरोधाभास दिखाई देता है। वे शारीरिक दृष्टि से अत्यंत तपस्वी होते हुए भी अन्य बातों में असहिष्णु हो सकते हैं। इस द्वन्द्व एवं विरोधाभास को हमारे व्यक्तित्व से हटाने के लिए सर्वप्रथम तितिक्षा में प्रतिष्ठित होना आवश्यक है।

सामाजिक जीवन में हमें किसी-न-किसी रूप में तितिक्षा का अभ्यास करना ही पड़ता है। बच्चे के लालन पालन में माता न जाने कितने कष्ट नहीं उठाती? धन वैभव प्राप्त करने के लिए लोगों को कितनी मिहनत करनी पड़ती है? यही नहीं, 'एक खिलाड़ी को श्रेष्ठ खिलाड़ी बनने के लिए कितने अनुशासन एवं नियमों का पालन करना पड़ता है? जब सांसारिक उद्देश्यों के लिए तितिक्षा का अभ्यास किया जा सकता है, तो क्या भगवद्दर्शन रूप चरमोद्देश्य के लिए नहीं किया जा सकता है? वस्तुतः आदर्श के प्रति तीव्र आकर्षण तितिक्षा एवं तप को सहज बना देता है। जो साधक निरन्तर भगवच्चिन्तन रूपी परम तप को करता है, उसे दैनन्दिन जीवन के दुःख कष्टों का भान ही नहीं होता।

उपवास एवं आहार सम्बन्धित तप—उपवास, अनाहार अथवा अर्ध-आहार विषयक तप सबसे अधिक प्रचलित हैं। इन्हें देहासक्ति कम करने के स्थूलतम उपायों के रूप में देखा जा सकता है। लेकिन इनके मानसिक पक्ष अधिक महत्वपूर्ण हैं। उपवास शब्द का

अर्थ होता है भगवान के निकट बैठना। वास्तविक उपवास तो वह है जब साधक भगवच्चिन्तन में इतना तन्मय हो जाय कि उसे खाने पीने की सुध-बुध ही न रहे। इसी प्रक्रिया को उलटकर यह कहा जाता है कि भोजन के लिए जितना समय एवं शक्ति हम व्यय करते हैं, उसे बचाकर भगवच्चिन्तन में लगाएँ। यदि अनशन किया जाय लेकिन भगवच्चिन्तन न हो तो ऐसा अनशन तामसिक तप की श्रेणी में आयेगा! इससे किसी मोटे व्यक्ति की चर्बी घट जाने का लाभ हो सकता है। इससे अधिक कुछ नहीं। यही कारण है कि अनेक धर्माचार्य अनशनादि को प्रोत्साहित न करके युक्ताहार को महत्व देते हैं। फिर भी साधक के लिए एकादशी अमावस्या आदि तिथियों पर अथवा सप्ताह के किसी एक दिन सीमित आहार अथवा अनाहार रूपी व्रत रखना बहुत उपयोगी है। इसी तरह कभी-कभी रात्रि जागरण करके अथवा प्रतिदिन प्रातःकाल सूर्योदय के पूर्व जागकर भगवच्चिन्तन एवं भगवन्नाम का जप करना अत्यन्त उपयोगी तप है। जागरण एवं निद्रा के विषय में भी मध्यम मार्ग का नियम ध्यान में रखना चाहिए।

सत्य—श्रीरामकृष्ण कहा करते थे कि सत्य कलिकाल की तपस्या है। वे सभी लोग जो न्यूनाधिक रूप में सत्य बोलने एवं अपने वचन को पालन करने का प्रयत्न करते हैं, जानते हैं कि आज के युग में मन, वचन एवं शरीर से सत्य पालन कितना कठिन है। इस कठिनाई के कारण ही श्री रामकृष्ण इसे तपस्या की संज्ञा देते हैं। वाचिक तप के रूप में विशेष अवसरों पर मौन रहने का भी प्रचलन है। लेकिन अनुद्वेगकर, हितकर एवं सत्य भाषण, मौन से कहीं अधिक कठिन है। पर संयत एवं शुभ बोलने की आदत डालने की लिए सर्वप्रथम मौन रहने का अभ्यास करना पड़ता है। जो मौन रह सकता है वही संयत वचन बोल सकता है। यदि हम अपने दैनन्दिन व्यवहार का अवलोकन करें तो पाएँगे कि हम प्रायः बोलने के लिए व्यग्र बने रहते हैं। यदि बोलना शुरू करें तो रुकना ही नहीं चाहते एवं कई बार तो बिना कहे बोलने लगते हैं। साधक को इस प्रकार के व्यवहार को संयत करना होगा। प्रारंभ में यदि कोई उसे बोलने को न कहे तो न बोले। दो व्यक्ति यदि बात कर रहे हों तो उस बीच न बोले एवं अगर बोलना भी पड़े तो दो चार वाक्यों में अपनी बात कहकर चुप हो जाय। इस प्रकार का अभ्यास एक श्रेष्ठ तप है, जिसका समर्थन सभी धर्मशास्त्र करते हैं। यह स्मरण रखें कि काम की बात थोड़ी ही होती है। सत्य अपने आप में एक महत्वपूर्ण साधना है जिसका विस्तृत विवेचन यहाँ संभव नहीं है। यहां केवल इतना कहना ही पर्याप्त है कि प्रत्येक साधक को सत्य पालन का भरसक प्रयत्न करना चाहिए।

ब्रह्मचर्य—श्रीरामकृष्ण के अन्तरंग शिष्य स्वामी ब्रह्मानन्द जी के अनुसार ब्रह्मचर्य श्रेष्ठतम तप है। ब्रह्मानन्द जी अनशनादि दैनिक तप को ब्रह्मचर्य की तुलना में नगण्य मानते थे। उत्तेजक आहार के वर्जन से ब्रह्मचर्य पालन में सहायता मिलती है। लेकिन वास्तविक ब्रह्मचर्य निरन्तर शुभ चिन्तन एवं सर्वेद्रिय संयम से हो सध सकता है।

आज्ञाकारिता—आधुनिक युगोपयोगी एक महत्वपूर्ण तपस्या का उल्लेख भगिनी निवेदिता ने किया है। उनके अनुसार भिन्न प्रकृति के लोगों के साथ एक समुदाय में मिलजुलकर रहना बाह्य तप से कहीं अधिक महत्वपूर्ण तपस्या है। इस संदर्भ में ईसाई धर्म संघों में अनुष्ठित आज्ञाकारिता उल्लेख योग्य है। संघाध्यक्ष अथवा धर्म गुरु एवं संघ के नियमों का निष्ठा एवं पूर्णता से पालन करना ईसाई साधकों की एक महत्वपूर्ण साधना है। इसे आन्तरिक तप अथवा Internal Mortification कहा जाता है और इसका मुख्य उद्देश्य अहंकार को चूर्ण-विचूर्ण करना होता है। अपने गुरु अथवा धर्म संघ के संदर्भ में अपने मठाध्यक्ष के आदेश को चाहे वह कितना ही अरुचिकर क्यों न हो, सहर्ष, तत्परता के साथ, पुंखानुपुंख रूप से पालन करना अपने आप में एक महान साधना है, जो साधक के अहंकार को

ठोक पीटकर प्रभु के हाथों में एक सुयोग्य यंत्र के रूप में परिणत कर देता है।

ध्यान—जैन शास्त्रों के अनुसार तप बारह प्रकार के हैं जिनमें से छः बाह्य एवं छः आभ्यान्तरिक होते हैं। छः आभ्यान्तरिक तप में ध्यान भी एक है। शुभ एकाग्र आत्म परमात्म-विषयक धार्मिक चिन्तन एक श्रेष्ठ तप है। निरंतर भगवच्चिन्तन करना, अपने स्वरूप अथवा इष्ट-चिन्तन एवं विवेक द्वारा आत्मा को अनात्मा से पृथक करते रहने को परम तप कहना अनुपयुक्त नहीं होगा। सभी बाह्य तपों का उद्देश्य भी यही है। यह स्मरण रखकर साधक को तपोमय जीवन व्यतीत करने का प्रयत्न करना चाहिए।

तप एक जीवन पद्धति—वस्तुतः तप को साधक के जीवन का अभिन्न अंग होना चाहिए। भले ही साधक तप को साधना के रूप में प्रारंभ करे। किन्तु अन्त में वह उसके लिए इतना स्वाभाविक हो जाना चाहिए कि उसके समग्र जीवन का एक भी क्षण प्रमाद, आलस्य अथवा लापरवाही से न बीते। ऐसा जीवन अनभ्यस्त व्यक्ति के लिए अत्यधिक कठिन एवं भारस्वरूप होते हुए भी अभ्यस्त व्यक्ति के लिए अत्यन्त आनन्ददायक होता है। स्वामी विवेकानन्द इसके एक उत्कृष्ट उदाहरण हैं। बाह्य दृष्टि से उन्होंने कभी उपवासादि तप नहीं किये। लेकिन उनका समग्र जीवन इतना संयत, तीव्र एवं वेगवान था कि यदि कोई दूसरा व्यक्ति उनकी तरह जीने का प्रयत्न करे तो वह उसके लिए महान तपस्या का रूप ले लेगा। श्रीरामकृष्ण कहते थे कि उसके (स्वामी विवेकानन्द) के भीतर ज्ञानाग्नि निरन्तर प्रज्वलित रहती हैं। स्वामी विवेकानन्द का जीवन ज्ञानमय तप के द्वारा प्रज्वलित था जो बाह्य तप से कई गुना अधिक श्रेष्ठ है।

●

राष्ट्रचेता-स्वामी विवेकानन्द

—डॉ० प्रभा भार्गव
राजनीति शास्त्र विभाग
डूंगर महाविद्यालय, बीकानेर

स्वामी विवेकानन्द राष्ट्रीय चेतना के सच्चे उद्घोषक थे। मोक्ष-प्राप्ति के उद्देश्य के साथ ही उन्होंने जन-कल्याण हेतु सामान्य जनों के आध्यात्मिक और भौतिक विकास के लिए जीवन पर्यन्त संघर्ष किया। उन्होंने अध्यात्म पिपासुओं को ही आकर्षित नहीं किया, अपितु वे राजनीतिज्ञ, समाजसुधारक, कलाकार, साहित्यकार वैज्ञानिक आदि की प्रेरणा के कारक बिन्दु भी बने। स्वामी जी उस विराट सागर के समान थे जिसमें धर्म और राजनीति, राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता तथा उपनिषद् और विज्ञान सबके सब समाहित होते हैं। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने लिखा है कि "स्वामी विवेकानन्द का धर्म राष्ट्रीयता को उत्तेजना देने वाला धर्म था। नयी पीढ़ी के लोगो में उन्होंने भारत के प्रति भक्ति जगायी उसके अतीत के प्रति गौरव एवं उसके भविष्य के प्रति आस्था उत्पन्न की। उनके उद्गारों से लोगों में आत्म-निर्भरता और स्वाभिमान के भाव जगे हैं। स्वामीजी ने सुस्पष्ट रूप से राजनीति का एक भी सन्देश नहीं दिया किन्तु जो भी उनके अथवा उनकी रचनाओं के सम्पर्क

में आया उसमें देशभक्ति और राजनीतिक मानसिकता अपने आप उत्पन्न हो गयी है।" पंडित जवाहरलाल नेहरू ने भी कहा "पता नहीं कि आज की पीढ़ी में से कितने लोग स्वामी विवेकानन्द के व्याख्यानों और लेखों को पढ़ते हैं। पर मैं यह कह सकता हूँ कि मेरी पीढ़ी के बहुत से लोगों पर उनका बहुत सशक्त प्रभाव पड़ा था ······वे साधारण अर्थ में कोई राजनीतिज्ञ नहीं थे; फिर भी मेरी राय में वे भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के महान संस्थापकों में से एक थे और आगे चलकर जिन लोगों ने आन्दोलन में थोड़ा या बहुत सक्रिय भाग लिया, उनमें से अनेक के प्रेरणा स्रोत स्वामी विवेकानन्द थे।'

यह सत्य है कि स्वामीजी ने अपने को कभी भी राजनीतिक क्षेत्र का मसीहा नहीं माना। फिर भी वे राजनीतिक स्वातन्त्र्य चाहते थे, पर इसके लिए उन्होंने धर्म और अध्यात्म का मंच चुना था। सिंगापुर के सांस्कृतिक मंत्री एस० राजरत्नम् ने अपने एक भाषण में कहा "यद्यपि स्वामी विवेकानन्द ने अपने को राजनीति में कभी नहीं फसाया तथापि उन्होंने उस समय रूप लेने वाले राष्ट्रवादी आन्दोलन एवं राष्ट्रीय पुनर्जागरण की प्रेरणा दी। अनेक युवा राष्ट्रवादियों के लिए वे उठने वाली राष्ट्र चेतना की लहर के प्रतीक बन गये।" डा० टी० एम० पी० महादेवन स्वामी विवेकानन्द को आधुनिक भारत के प्रथम राष्ट्रवादी नेताओं में प्रमुख मानते हैं तथा उन्हें भारत की अपूर्व राष्ट्रवादी भावना का श्रेय प्रदान करते हुए लिखते हैं, 'वह देशभक्त संन्यासी स्वामी विवेकानन्द का वेदान्ती राष्ट्रवाद ही था, जिसने महात्मा गांधी की नीतियुक्त राजनीति को दिशा दी, जिससे भारत स्वाधीन हुआ है।" चक्रवर्ती राजगोपालाचारी के अनुसार "उन्होंने भारत की आँखें उसकी अपनी सच्ची महानता के प्रति खोल दी। हम अन्धे थे, और उन्होंने देखने की क्षमता दी। वे राजनीतिक सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक सभी क्षेत्रों में भारतीय स्वातंत्र्य के जनक थे।"

स्वामीजी जानते थे कि राष्ट्रोद्धार का एकमात्र उपाय स्वतंत्रता है। अतएव, उन्होंने कहा था कि "यहाँ अमेरीका में जन्म लेने वाला प्रत्येक व्यक्ति यही समझता है कि वह मनुष्य है। भारतवर्ष में जन्म लेने वाला प्रत्येक मनुष्य जानता है कि वह समाज का गुलाम है।" गुलाम जाति की कभी उन्नति नहीं हो सकती। इसलिए उन्होंने सारे भारत को अपने परम्परागत देवी देवताओं को भूलने की सलाह देते हुए कहा था कि "आगामी पचास वर्षों में हमारा केवल एक ही विचार केन्द्र होगा—और वह है हमारी जन्मभूमि भारत। हमारा राष्ट्र पुरुष, यही एक देवता है जो जाग रहा है, जिसके हर जगह हाथ हैं, हर जगह पैर हैं, हर जगह कान हैं—जो सब वस्तुओं में व्याप्त है। दूसरे सब देवता सो रहे हैं। हम क्यों उन व्यर्थ के देवताओं के पीछे दौड़ें, और उस देवता की, उस विराट की पूजा क्यों न करें, जिसे हम अपने चारों ओर देख रहे हैं? जब हम उसकी पूजा करेंगे, तभी हम दूसरे देवताओं की पूजा करने के योग्य बनेंगे।"

स्वामीजी स्वतन्त्रता के सन्देशवाहक थे। उन्होंने राजनीतिक आन्दोलन में भाग नहीं लिया फिर भी स्वतन्त्रता के लिए उनके मन में उत्कट अभिलाषा थी। 'संन्यासी का गीत' नामक कविता में उन्होंने स्वतन्त्रता की धारणा को ओजस्वी भाषा में प्रतिष्ठित और पवित्रीकृत किया। उनके अनुसार स्वतंत्रता की प्राप्ति ही मानव जीवन का चरम लक्ष्य है और स्वतन्त्रता ही मानव समाज के विकास का मूलमंत्र है। जो सामाजिक नियम इस स्वतन्त्रता के विकास में बाधा डालते हैं उन्हें शीघ्र नष्ट करने के लिए प्रयत्न करना चाहिए। यद्यपि उन्होंने मुख्यत: आध्यात्मिक स्वतन्त्रता की धारणा का सन्देश दिया परन्तु उनके सन्देश का प्रभाव यह हुआ कि राजनीतिक व अन्य दिशाओं में स्वतन्त्रता के विचार लोकप्रिय हो गये। स्वामीजी ने संयुक्त राज्य अमेरिका की स्वाधीनता की घोषणा और फ्रांस की क्रांति से प्रभावित होते हुए कहा– "फ्रांस ही स्वाधीनता का उद्गम स्थल है, इस पेरिस महानगरी से ही राजशक्ति के बड़े वेग से

उठकर यूरोप की जड़ को हिला दिया। उसी दिन से यूरोप का नया आकार सामने आया।" इसी प्रकार अमेरिका के १८८७ के स्वाधीनता दिवस पर उन्होंने एक गीत भी लिखा था।

स्वामी विवेकानन्द की योजना द्विविध थी। एक के द्वारा वे भारत की आध्यात्मिकता को गतिशील बना देशवासियों में नव चेतना का उन्मेष करना चाहते थे और दूसरे के द्वारा वे सामर्थ्यवान युवकों मे देश के राजनीतिक स्वातन्त्र्य के लिए प्राण फूंकना चाहते थे। और यदि भारत में कोई इस कार्य में सबसे पहले समर्थ हुआ तो लाला लाजपतराय के अनुसार वह स्वामी विवेकानन्द थे।

यदि स्वामी विवेकानन्द और दयानन्द सरस्वती जैसी धार्मिक और सांस्कृतिक जागरण का नेतृत्व करने वाली विभूतियाँ नहीं होतीं तो राजनीतिक स्वतन्त्रता का विचार हमारे देशवासियों में उत्पन्न नहीं हो सकता था। क्योंकि उन्होंने राष्ट्रीय सांस्कृतिक गौरव की भावना जगाकर देशवासियों को हीन भावना की ग्लानि से छुटकारा दिलाया। उन्होंने सांस्कृतिक चेतना उत्पन्न की, जिससे राष्ट्रीय गौरव जगा। आत्मविश्वास और आत्म-पौरुष को जागृत करने का उन्होंने प्रयास किया। परिणामतः राजनीतिक आजादी की माँग को बल मिला। स्वामीजी ने अपनी वाणी और कर्त्तव्य से भारतवासियों में यह अभिमान जगाया कि हम अत्यन्त प्राचीन सभ्यता के उत्तराधिकारी है। हमारे धार्मिक ग्रंथ संसार में सबसे उन्नत और हमारा इतिहास सबसे महान्, हमारी संस्कृत भाषा विश्व की सबसे उन्नत भाषा और हमारा साहित्य सबसे उन्नत साहित्य है। यही नहीं; प्रत्युत हमारा धर्म ऐसा है जो विज्ञान की कसौटी पर खरा उतरता है और जो विश्व के सभी धर्मों का सार होते हुए भी उन सबसे कुछ और अधिक है। स्वामीजी के विचारों से हिन्दुओं में यह विश्वास उत्पन्न हुआ कि उन्हें किसी के भी सामने झुकने की जरूरत नहीं है। सांस्कृतिक राष्ट्रीयता पहले राजनीतिक राष्ट्रीयतावाद में जन्मी और इस सांस्कृतिक राष्ट्रीयता के पिता, स्वामी विवेकानन्द थे। अतः स्वामी विवेकानन्द ने सांस्कृतिक चेतना पैदा की और बाद में गांधी और तिलक में इसका राजनैतिक अनुवाद हो गया।

ब्रिटिश साम्राज्य की दमनकारी नीति का वर्णन करते हुए स्वामीजी कहते हैं कि "अब भारत राजनीतिक शक्ति नहीं, आज वह दासता में बँधी हुई जाति है। अपने ही प्रशासन में भारतीय की कोई आवाज नहीं, वे हैं केवल ३० करोड़ गुलाम—और कुछ नहीं।" इसके आगे वे लिखते हैं—"यह आज की स्थिति है—शिक्षा को भी अब अधिक नहीं फैलने दिया जायेगा, प्रेस की स्वतन्त्रता का गला घोंट दिया गया है और स्वशासन का जो थोड़ा अवसर हमको पहले दिया गया था, शीघ्रता से छीना जा रहा है।··· ·····निर्दोष आलोचना में लिखे कुछ शब्दों के लिए लोगों को कालापानी की सजा दी जा रही है मौलिकता की किंचित अभिव्यक्ति भी दबा दी जाती है। अन्य लोग बिना मुकदमा चलाये जेल में ठूँसे जा रहे हैं और किसी को कुछ पता नहीं कि कब उनका सिर धड़ से अलग हो जायेगा। कुछ वर्षों से भारत में आतंकपूर्ण शासन का दौर है। अंग्रेज सिपाही देशवा-सियों का खून कर रहे हैं।······इस पत्र को केवल प्रकाशित कर दिया जाये तो······अंग्रेजी सरकार मुझे यहाँ से भारत घसीट ले जायेगी और बिना किसी कानूनी कार्रवाई के मुझे मार डालेगी।"

अतः ब्रिटिश शासन से मुक्ति की आवश्यकता का अनुभव करते हुए वे राष्ट्र देवता का आह्वान करते हैं—"सभी देवी देवताओं को भुला दो······यह हमारी जाति ही एकमात्र ईश्वर है ····हमारे सर्वप्रथम आराध्य हैं हमारे देशवासी······हम सभी लोगों को इस समय कठिन परिश्रम करना होगा। अब सोने का समय नहीं है। हमारे कार्यों पर भारत का भविष्य निर्भर है। यह देखो, भारत माता धीरे-धीरे आँखें खोल रही है। उठो, उसे जगाओ और पूर्वपेक्षा महागौरव से मण्डित कर भक्ति भाव से उसे अपने चिरन्तन सिंहासन पर

प्रतिष्ठित करो।" "तुम्हें किसी भी प्रकार की विदेशी
सहायता पर निर्भर नहीं रहना है। व्यक्ति की भांति
राष्ट्र को भी सहायता आप ही करनी होगी। यही सच्ची
देशभक्ति है।" स्वामीजी के आग्नेय विचारों ने देशवा-
सियों में राष्ट्रीय जागरण का शंखनाद किया। भारतीयों
की गुलाम मानसिकता को परिष्कृत कर उसे स्वाभिमान
और देशाभिमान पर प्रतिष्ठित किया। यह सर्व विदित
है कि स्वामीजी के निधन के तीन वर्ष पश्चात् तिलक,
गांधी के महान आन्दोलन के श्री गणेश के रूप में जो
बंग विद्रोह आगत पीढ़ी के सामने हुआ और मद्रास में
संगठित आंदोलन हुए, सब मद्रास के सन्देश में निहित
"लाजारस आगे बढ़ो" की गुरु गंभीर पुकार के कारण
हुए जिसने बहुतों को जगाया।" जैसे लोकमान्य तिलक,
राष्ट्रपिता महात्मा गांधी, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस,
राष्ट्रनायक पंडित नेहरू, राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद,
चक्रवर्ती राजगोपालाचारी जैसे महान राजनीतिज्ञ,
स्वामी रामतीर्थ, महर्षि अरविन्द, डा० राधाकृष्णन् तथा
विनोबा भावे जैसे सन्त, दार्शनिक और विचारक,
जगदीशचन्द्र बसु जैसे वैज्ञानिक तथा रवीन्द्रनाथ ठाकुर
जैसे प्रख्यात कवि और साहित्यकार आदि ने स्वामी
विवेकानन्द से प्रेरणा पाकर राष्ट्रीयधारा को नवीन
आयाम प्रदान किये।

स्वामीजी का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से क्रांति-
कारियों पर प्रबल प्रभाव था। उस समय क्रांतिकारी
साहित्य, के अभाव में स्वामीजी की पत्रावली और
'कोलम्बो से अल्मोड़ा, नामक व्याख्यान संग्रह ही उनके
हृदय में शोले भड़का देते थे।' क्रांतिकारी युवक
स्वामीजी और गीता से अनुप्राणित होकर हंसते-हंसते
मौत को गले लगा लेते थे। क्रांतिकारियों के घर छापा
मारने पर स्वामीजी की पुस्तकें मिलती थीं। राजनीतिक
कैदियों में से अनेकों के पास गीता एवं स्वामी विवेका-
नन्द की प्रतियाँ मिलीं।

स्वामीजी राष्ट्रीय अन्दोलन को महत्वपूर्ण मानते
हुए उसकी सफलता के लिए हार्दिक से शुभकामनाएँ इस
प्रकार व्यक्त करते हैं—भारत की विभिन्न जातियों से एक
राष्ट्र का निर्माण हो रहा है......और अन्ततोगत्वा
वह प्रजातांत्रिक भावों की उपलब्धियाँ करेगी।" चक्र-
वर्ती राजगोपालाचारी ने ठीक ही लिखा था "स्वामी
विवेकानन्द न होते, तो हम अपना धर्म गवाँ बैठते और
आजादी नहीं पा सकते थे। अतएव, हम सभी बातों के
लिए विवेकानन्द के ऋणी हैं।"

□

पृथ्वी पर ऐसा कोई धर्म नहीं है जो हिन्दू धर्म के समान इतने उच्च-स्वर से मानवता के गौरव का उपदेश करता हो, और पृथ्वी पर ऐसा कोई धर्म नहीं है जो हिन्दू धर्म के समान गरीबों और नीच जाति वालों का गला ऐसी क्रूरता से घोंटता हो। प्रभु ने मुझे दिखा दिया है कि इसमें धर्म का कोई दोष नहीं है, वरन् दोष उनका है, जो ढोंगी और दम्भी हैं, जो 'पारमार्थिक' और 'व्यावहारिक' सिद्धांतों के रूप में अनेक प्रकार के अत्याचार के अस्त्रों का निर्माण करते हैं।.........

—स्वामी विवेकानन्द
(वि० सा० खं० १, पृ० ४०३)

यात्रा वृत्तांत

अखण्ड आनन्द का देश : उत्तराखण्ड का दिव्य परिवेश (3)

—'मुसाफिर'

पता चला आश्रम में अब लकड़ी का भी अभाव हो गया है, अत: यात्रियों के लिए वहाँ ठहरने का अब प्रश्न ही नहीं उठता है। इसलिए गोमुख की ओर प्रणाम करते हुए, भगवान की मर्जी के अनुसार फिर कभी गोमुख दर्शन की अभिलाषा रखते हुए हमलोगों ने लगभग आठ बजे सुबह गंगोत्री के लिए प्रस्थान कर दिया। जाने के पहले आसपास के तुषारमंडित सुन्दर वातावरण को कैमरे में आबद्ध कर लिया।

भगवान की कृपा से हिमवर्षा अब बंद हो गयी थी, सूर्यनारायण की किरणों का सुखद अनुभव हो रहा था। किन्तु रास्ते पर बर्फ जमी हुई थी। फिसलने की पूरी आशंका थी। कहीं-कहीं तो घुटनों तक बर्फ मिली। गंगोत्री पहुँचने के २३ की० मी० पहले एक अन्ध वृद्ध से भेंट हुई। वह पूछते हुए जा रहा था—अभी गोमुख कितनी दूर है। हमलोगों ने तथा अन्य यात्रियों ने उन्हें समझाने की बहुत कोशिश की कि गोमुख अभी भी १४-१६ की०मी० दूर है, वहाँ जाना अभी असंभव है क्योंकि ८-१० फीट बर्फ है, हमलोग भी वहाँ नहीं पहुँच पाये इत्यादि। किन्तु बूढ़े ने एक न सुनी। वह अपनी धुन में भगवान का नाम लेता हुआ लाठी ठोकते-ठोकते ऊपर चढ़ता ही गया। मार्ग में पिछली रात की हिमवर्षा के कारण कई यात्री मृत्यु की चपेट में आ गये थे—उनकी लाशें रास्ते में देखने को मिली थीं, अब शायद यह एक और! किन्तु उपाय क्या था? बूढ़े पर गुस्सा भी आया, करुणा भी हुई। साथ ही भारतमाता के चरणों में सिर श्रद्धा से झुक गया। सचमुच, यह पुण्यभूमि है, जहाँ लोग धर्म के लिए प्राण त्याग देते हैं।

दोपहर १२ बजे तक हम गंगोत्री पहुँच गये। वर्षा मानो हमारे पहुँचने की प्रतीक्षा कर रही थी। किसी प्रकार दण्डी आश्रम पहुँचे। दिन भर वर्षा के कारण बाहर नहीं निकल पाये। शाम को आश्रम में ही भिक्षा ग्रहण कर भगवान का नाम स्मरण करते-करते सो गये। सुबह उठकर दरवाजे से बाहर निकलते ही आश्चर्यचकित हो गये। नीचे उतरने की सीढ़ी पर दो फीट बर्फ जमी थी, ऊपर छत पर बर्फ थी, नीचे ड्रम में रखा पानी जम गया था। यहाँ भी सारी रात हिमवर्षा हुई थी। किसी प्रकार बर्फ से ही प्रात:कृत्य निपटा कर गरम चाय का आनंद लेने लपक पड़े। कमरे में लौटकर खिड़की खोलने पर अद्भुत दृश्य दिखा। सामने के मकान, देवदार वृक्ष सभी हिमाच्छादित थे। दो मकानों के बीच एक सफेद रंग की पाइपलाइन लगी हुई थी। "पहले दिन तो यह पाइप नहीं थी, एक ही रात में किसने यह कमाल किया होगा" ऐसा सोच रहा था तभी सूर्यनारायण की किरणों ने इस रहस्य का भेद बता दिया। कपड़े सुखाने वाली एक डोर पर सारी रात हिम पड़ने से यह पाइप के आकार की हो गयी थी और अब हिम का पिघलना शुरू हो गया था। भगवान की लीला।

अब आगे क्या किया जाय? चारों में इस बात पर चर्चा प्रारंभ हो गयी। भारी हिमपात से गंगोत्री से भैंरवघाटी तक का रास्ता बन्द हो गया था। एक ने प्रस्ताव रखा— सौभाग्य से मौसम कुछ अच्छा है, सूरज भी निकला है, अत: शीघ्र केदारनाथ की ओर प्रस्थान करना चाहिए। १ की० मी० चलते ही भैंरवघाटी से बस मिल जायगी। किन्तु सभी पिछले दिनों के परिश्रम और कड़कड़ाती शीत के कारण थके हुए थे और फिर से

भैरवघाटी तक पैदल चलने के लिए प्रस्तुत नहीं थे। इस प्रकार वाद-विवाद चल रहा था कि आश्रम के एक कर्मचारी ने आदेश देकर सभी समस्याओं का अन्त कर दिया—"आधे घण्टे में कमरा खाली कर दीजिए, वर्षा रुक गयी है, दूसरे यात्रियों के लिए जगह करनी होगी।" हमलोग एक दूसरे का मुँह देखने लगे। अब तो और कोई चारा नहीं था। शीघ्र तैयार हो कर एक कुली के सिरपर सामान रखकर ११ बजे रवाना हो गये। रास्ते में हिमपात के कारण लुढ़कती हुई हिम-शिलाएँ मिलीं। सुना, कई लोग इस प्रकार भू-स्खलन से मर जाते हैं। एक दो जगह हम भी गिरती हुयी हिम-शिलाओं से बचे। भगवान की असीम दया से सायं ३ बजे सकुशल भैरवघाटी पहुँच गये।

यहाँ पहुँचकर एक नयी समस्या आ खड़ी हुई। आगे का रास्ता भी भू-स्खलन (landslide) के कारण बन्द था। हजारों यात्री यहाँ फँसे हुए थे। कई बसें भी भटक गयी थीं। धर्मशाला क्या अतिथिग्रह मे भी तिल-मात्र जगह नहीं थी। कब रास्ता ठीक होगा और कब बसों का जाना प्रारंभ होगा, सबकुछ अनिश्चित था। ऐसी अवस्था में यदि रात गुजारनी पड़ती तो यह अनूठा अनुभव ही होता। किन्तु भगवान की कृपा से सायं ४ बजे लगभग बसों का जाना प्रारंभ हो गया। इस बार भी गौरीकुण्ड (केदारनाथ के निकटतम बस-स्टैन्ड) तक सीधी जानेवाली यात्री बस में ही बैठे। "जय बाबा केदारनाथ की जय", "गंगे महारानी की जय" इत्यादि नारों से यात्रियों ने श्रद्धापूर्वक यात्रा प्रारंभ की। रात्रि-वास फिर से उत्तरकाशी। लगभग १०० की० मी० का रास्ता तय कर रात को ८ बजे वहाँ पहुँच गये। दूसरे दिन भोर ४ बजे बसवालों ने बुलाया था किन्तु अब हमलोग यहाँ की घड़ी के जानकार हो गये थे। भोर ४॥ बजे तैयार होकर बस-स्टैन्ड आये। आशानुसार ड्रायवर तब तक सो रहा था। ५॥ बजे बस रवाना हुई। यात्रियों ने फिर से जय-जयकार किया। दोपहर का भोजन गुप्तकाशी में कर के २४० की० मी० लम्बा रास्ता तय कर सायं ३ बजे गौरीकुण्ड पहुँचे। जाकर भारत सेवाश्रम के अतिथिग्रह में आश्रय लिया। वैसे यहाँ धर्मशालाओं, होटलों तथा अतिथिगृहों की कमी नहीं—एक छोटा-मोटा बाजार ही है। यहाँ का तप्तकुण्ड भी प्रख्यात है। हम सभी थके हुए थे तथा गरम जल से स्नान करने के लिए बेताब थे। पहुँचकर तुरन्त तप्त कुण्ड में स्नान किया तथा पार्वती जी के मंदिर के दर्शन किये। किंवदन्ती है कि पार्वतीजी का जन्म इसी स्थान पर हुआ था। अब हमलोग समुद्री सतह से ६५०० फीट की ऊँचाई पर थे, अत: ठण्ड का होना स्वाभाविक था। खा-पीकर निद्रादेवी की शरण में चले गये।

दूसरे दिन अर्थात् २३ मई को भोर ५ बजे श्रीरामकृष्ण, माँ सारदा देवी तथा स्वामीजी का स्मरण कर 'भगवान केदारनाथ की जय' बोलते हुए केदारनाथ की ओर चल पड़े। पिछले दिन केदारनाथ में भी अप्र-त्याशित हिमवर्षा हुई थी, सुनकर पोलीथीन का जो रेनकोट खरीद लिया था उसे भी छोटी बैग में रख लिया। प्राकृ-तिक सौंदर्य का मजा लेते हुए लगभग २॥ घन्टे बाद रामबाड़ा पहुँचे जो गौरीकुण्ड से लगभग ६ की० मी० दूर है। केदारनाथ अभी भी ७ की० मी० दूर था। वहाँ चाय-पान कर कुछ आगे बढ़ते ही शुभ्र तुषा-रामण्डित केदारश्रृंग तथा शिवलिंगश्रृंग के दर्शन हुए। केदारश्रृंग तो मानो आसमान को छू रहा था। यह दृश्य इतना लुभावना था कि हम कुछ देर एक शिलाखण्ड पर बैठ गये। मौसम भगवान की कृपा से अब साफ था, किन्तु पिछले दिन की हिमवर्षा से चारों ओर बर्फ ही बर्फ दिखायी दे रही थी। रास्ते पर की बर्फ पिघलने से फिसलने की संभावना थी अत: साव-धानी से धीरे-धीरे अग्रसर हुए।

२३ की० मी० आगे बढ़ने ही केदारनाथ के भव्य मंदिर के दर्शन हुए। हमलोगों के हर्ष की सीमा न रही। सारी थकावट मानो दूर हो गयी। दुगने उत्साह से आगे बढ़ने लगे। लगभग ११ बजे पहुँचे। हमलोग अब समुद्री सतह से १२०० फीट ऊपर थे। सामने ही था केदार नाथ का भव्य मंदिर। मंदिर केदारश्रृंग के

ठीक नीचे समधरातल भूमि (जिसे केदारभूमि कहते हैं) अवस्थित है। तीनों ओर आकाशगामी शैलशिखर खड़े थे। लगता था मानो हम धरती के अंतिम छोर तक पहुँच चुके हैं। पास ही में मन्दाकिनी का उद्गम स्थान था। मंदिर के पीछे स्वर्गारोहिणी एक लम्बी सी श्वेत जलधारा के रूप में अवस्थित थी। कथा है, पाण्डव इसी रास्ते से सदेह स्वर्ग गये थे। अब भी कुछ अन्धविश्वासी लोग भृगु पथ से सदेह स्वर्ग जाने की चेष्टा करते हैं। केदारनाथ के सर्वप्रथम यूरोपियन यात्री स्किनर के अनुसार १८२९ में ही इस प्रकार प्राण उत्सर्ग करने-वालों की संख्या १५,०० थी। आदि शंकराचार्य भी संभवत: इसी स्थान के पास से अर्न्तधान हो गये थे। इस स्मृति में आद्य शंकराचार्य का समाधि-मंदिर मंदाकिनी के तट पर केदारनाथ के मंदिर के पीछे बना है। चारों ओर केवल श्वेतवर्ण हिम को छोड़ कुछ नहीं था। और वातावरण में थी एक अपूर्व शान्ति; जिसका वर्णन असंभव है। वास्तव में स्वर्ग नामक कोई वस्तु है या नहीं कौन जाने, किन्तु मन कह उठा—"यही है स्वर्ग, यही है स्वर्ग। शिवजी ने अपने निवास के लिए इस परम रमणीय, प्रशान्त, स्वर्गीय स्थान को चुना हो तो इसमें अश्चर्य ही क्या?

पहुँचकर तुरन्त पंचभैया पंडे से मिले, जिसके बारे में हमने पहले से ही जान रखा था। यहाँ पर भी छोटा-सा बाजार है, कई अतिथिगृह हैं, फिर भी हमलोग भारत सेवाश्रम के अतिथिगृह में ही ठहरे। स्नानादि से निपट कर शीघ्र मंदिर में पहुँचे। हमारे पंडे ने तब तक पूजा की सामग्री खरीद कर रखी थी। पूजा-दर्शनादि के लिए लम्बी कतार थी, उसी में खड़े हो गये। कड़कड़ाती शीत में नंगे पाँव बर्फ पर एक घंटा खड़े रहना सचमुच कष्टसाध्य था। केदारबाबा ने दर्शन देने के पहले अच्छी तपस्या करा ली। कतार में खड़े खड़े, विशाल पाषाण शिलाओं से निर्मित इस भव्य मंदिर की अपूर्व शोभा को निहारने लगे। आश्चर्य! इतनी विशाल शिलाओं को उस प्राचीन काल में, कहाँ से, किस प्रकार लाया गया होगा? किंवदन्ती है कि इस मंदिर का निर्माण पांडवों ने किया था। किन्तु विशेषज्ञों के अनुसार यह लगभग १,२०० वर्ष पुराना है। संभवत: मालवा नरेश भोज ने यह मंदिर बनवाया था।

मंदिर में प्रवेश करते ही सभामंडप में पाण्डवों की मूर्तियाँ देखने को मिलीं। सुना कि ये ही यहाँ की शृंगार मूर्तियाँ हैं। गर्भगृह के द्वार पर शैव मूर्तियाँ बनी हुई थीं। यहाँ शिवलिंग अद्भुत है। कहते हैं सर्व-प्रथम इसका पूजन पाण्डवों ने किया था। इसके पीछे एक मजेदार कहानी है। जब महाभारत का युद्ध समाप्त हुआ तो भगवान वेदव्यास ने पाण्डवों को केदार गमन का आदेश दिया ताकि गोत्र हत्या के पाप से उन्हें मुक्ति मिल सके। पाण्डव जब केदारनाथ पहुँचे तो शिवजी महिष रूप बनकर भूमिगत होने लगे। इतने में भीम ने दौड़कर उनका पिछला भाग पकड़ लिया। पाण्डवों की भक्ति और व्याकुलता को देखकर शिवजी ने उन्हें साक्षात दर्शन दिये और गुरु हत्या एवं गोत्र हत्या के पाप के प्रायश्चित स्वरूप भीम द्वारा पकड़े गये पृष्ठ भाग की पूजा का आदेश देकर अन्तर्धान हो गये। उस पृष्ठ भाग ने शिला का रूप धारण किया जो उस दिन से सुपूजित हो रहा है। हमने भी देखा—शिवलिंग के नाम पर त्रिभुजाकार विशाल शिला को छोड़ कुछ भी नहीं। यहाँ पूजा की विशेषता है, यात्री स्वयं शिला की पूजा करते हैं। हमलोगों ने भी पण्डे की सहायता से, घृत, दुग्ध, चन्दन, विल्वपत्र, पुष्प आदि से पूजा की। यात्रियों की भीड़ अत्यधिक थी। भीतर अँधकार था, फिसलने का डर था फिर भी एक कोने में कुछ देर बैठे। अद्भुत आध्यात्मिक वातावरण था। कितने हजार वर्षों से कितने हजार श्रद्धालुओं ने हजारों मील पैदल यात्रा कर यहाँ अपनी भक्ति उड़ेली है।

मंदिर से लौटकर पेट पूजा में लग गये चूँकि सभी क्षुधार्त थे। भोजन तथा विश्राम के बाद आसपास के कुछ स्थानों को देखकर ३ बजे फिर से मंदिर में चले आये। पूजादि कृत्य दोपहर १ बजे तक ही चलते हैं अत: यात्रियों की भीड़ अब बहुत कम हो गयी थी। दोपहर के बाद गर्भमंदिर में प्रवेश निषिद्ध है अत: सभामण्डप में

ही चारों ने आसन लगाये और ध्यान, जप, स्तोत्रादि पाठ करने लगे। इस प्रकार ३ घन्टे अपूर्व आनन्द में बीते। संध्या आरती के समय फिर यात्रियों की भीड़ बढ़ने लगी। किसी प्रकार एक कोने में खड़े रहने का स्थान पाया। संध्या आरती का दर्शन कर पण्डे के पास से वहाँ के बारे में काफी जानकारियाँ हासिल कीं। अतिथिगृह के पास ही एक बंगाली सज्जन ने होटल खोल रखा था। उत्तराखण्ड में दाल-रोटी का ही प्रचलन अधिक है। अनेक दिनों बाद यहाँ खिचड़ी तथा सब्जी का भोजन मिला। आह, गरम-गरम खिचड़ी का क्या मजा था! सभी क्षुधार्त थे, अत: यह भोजन अमृततुल्य लगा। नींद भी बढ़िया हुई। अपने कार्यक्रम के अनुसार दूसरे दिन भोर साढ़े चार बजे चाय पीकर प्रस्थान किये। सारी रात हिम वर्षा हुई थी, किन्तु भगवान की कृपा से अब बन्द हो गयी थी। किन्तु कहीं-कहीं पर रास्ते में घुटनों तक बर्फ थी, अत: सावधानी से चलना पड़ा।

१३ की० मी० दूरी ५ घंटों में तय कर साढ़े नौ बजे गौरी कुण्ड पहुँचे। वहाँ पर भारत सेवाश्रम से अपना सामान लेकर तुरन्त सोनप्रयाग के लिए रवाना हो गये जो वहाँ से १६ की० मी० पड़ता है। लौटते समय यहीं से आगे की बसें उपलब्ध होती हैं, गौरीकुण्ड से नहीं। वहाँ पहुँचकर सुना कि अत्यधिक हिमपात एवं भू-स्खलन के कारण बदरीनारायण का रास्ता बन्द है। जो यात्री वहाँ ३-४ दिनों से फँस गये थे, उन्हें हेलिकॉप्टर द्वारा खाद्य वितरण किया जा रहा था, क्योंकि आवागमन के सभी मार्ग अवरुद्ध थे। कोई ठीक से नहीं बता पा रहा था, कब तक बसों का आवागमन अवरुद्ध रहेगा। शायद रुद्रप्रयाग में पता मिले, सोचकर लोकल बस द्वारा ६५ की० मी० दूरी पर अवस्थित रुद्रप्रयाग पहुँचे। यहाँ पता चला बदरीनाथ के लिए बसों का चलना अभी कुछ दिनों के लिए बन्द रहेगा। अब क्या किया जाय? हममें से दो को शीघ्र लौटना आवश्यक था। अत: वे दोनों हरिद्वार चले गये। मैं एक साथी को लेकर ऋषिकेश उतर गया। रात्रियापन कर दूसरे दिन हमने गीता मंदिर, स्वर्गाश्रम, लक्ष्मण झूला आदि का दर्शन किया और हरिद्वार लौट आये। यहाँ पर पूछताछ करने पर पता चला कि अभी भी बदरीनाथ के लिए बस का चलना अनिश्चित ही है। अब मेरे साथी का भी धैर्य टूट रहा था, उसने दिल्ली की राह पकड़ी। मैंने ठान लिया था, इतनी दूर आकर बदरीनारायण के दर्शन बिना नहीं लौटूँगा, कौन जाने, फिर कब इस तरफ आना हो? बस स्टैण्ड में प्रतिदिन पूछताछ करता रहा। अन्ततोगत्वा भगवान की कृपा से २१ मई के लिए बदरीनाथ की यात्री बस में आरक्षण हो गया। किन्तु हाय, दुर्भाग्य! २८ तारीख को रात को जब टिकट लेने गया तब पता चला, वायरलेस से संदेश आया है, फिर से भारी हिमपात एवं भू-स्खलन के कारण रास्ता अवरुद्ध हो गया है। अब मेरे पास भी लौटने के अलावा कोई चारा नहीं था। बदरीनारायण का दर्शन भाग्य में नहीं था। कौन जाने फिर कब उत्तराखण्ड आना हो? क्या बदरीनारायण कृपा कर दर्शन देंगे? कौन जाने? फिलहाल तो हे बदरीनारायण, तुम यहीं से प्रणाम स्वीकार करो। जय बदरी विशाल की जय! जय भगवान केदारनाथ की जय! जय गंगे महारानी की जय! जय जमुने महारानी की जय!

हे रामकृष्ण, तुम्हारी ही कृपा से हम उत्तराखण्ड की यात्रा निर्विघ्न समाप्त कर सकुशल वापस लौट सके। तुम्हारी असीम करुणा का अनुभव पल-पल पर हुआ। तुम्हें शत्-शत् प्रणाम! जय भगवान श्रीरामकृष्ण देव की जय! जय माँ सारदादेवी की जय! जय स्वामी विवेकानन्द की जय!

रामकृष्ण विवेकानन्द आन्दोलन का राष्ट्र-निर्माण में योगदान (3)

—डॉ० शैल पाण्डेय
हिन्दी विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

भारतीय नर-नारियों के बीच जातीय संस्कृति की नींव पर आधारित चरित्र गठन मूलक विभिन्न शिक्षाओं का प्रवर्तन करना तथा प्राचीन युग के नालन्दा, तक्षशिला, ओदन्तपुरी और विक्रमशिला के आदर्श ढाँचे में आधुनिक युग के उपयुक्त एक सर्वांग-सुन्दर विश्वविद्यालय की रचना करना—यह भी स्वामीजी ने रामकृष्ण संघ की व्यापक कार्यपालिका में सन्निविष्ट किया था। रामकृष्ण-संघ की ओर से जनसाधारण की सहानुभूति एवं सहायता से देश के विभिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न स्तरों के आधुनिक विद्यालय, महाविद्यालय, शिल्प-मंदिर, संस्कृत-शिक्षालय, छात्रावास, ग्रंथागार, संस्कृति-भवन, पुस्तकों और पत्रिकाओं के प्रकाशन केन्द्र, सहायता केन्द्र, धर्मार्थ चिकित्सालय, सेवा-भवन इत्यादि अनेक प्रकार की संस्थाएँ संगठित हो उठी हैं तथा संघ के संन्यासियों की देखरेख में उत्तम रूप से परिचालित हो रही हैं। संघ की ओर से चलाये जा रहे शिक्षण-संस्थानों में वही शिक्षा दी जा रही है, जिसका निर्देश स्वामीजी ने दिया था और जिसका हमारे महाविद्यालयों और विश्व-विद्यालयो में अभाव है। तभी तो हम इतनी बड़ी संख्या में मेधावी छात्रों को यहाँ से निकल कर राष्ट्र के जीवन में महत्वपूर्ण पदों पर अवस्थित होते देख रहे हैं। आज सारे देश में लोग चाहते हैं कि मिशन और अधिक शाखा केन्द्र, शिक्षण-संस्थान, चिकित्सालय, अनाथालय आदि खोले, क्योंकि वे जानते हैं कि जिस प्रकार की सेवा वे मिशन से पाएंगे, वह दूसरी जगह से पाने वाली सेवा से अधिक अच्छी होगी। किन्तु यह इस बात को प्रश्रय देता है कि लोग स्वयं निःस्वार्थ सेवा की भावना से भरकर ऐसी संस्थाओं की स्थापना के लिए आगे आएँ। हर्ष का विषय है कि वर्तमान प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से यह दर्शाती है कि यह भावना तेजी से फैलती जा रही है।

स्त्रियों की शिक्षा के प्रति भी स्वामीजी सचेत थे, जिससे बिना पुरुष के हस्तक्षेप के वे अपनी समस्याओं का समाधान स्वयं कर सकें। शिक्षित माताओं की सन्तानों से ही देश का उन्नयन संभव है। स्वामीजी ने नारी-शिक्षा के आदर्श की जो कल्पना अपने मन में पोषित की थी, उसे भारत में सबसे पहले मूर्त रूप देने वाली एक विदेशी महिला थीं—स्वामीजी की शिष्या "भगिनी निवेदिता'। अनेक बिघ्न-बाधाओं का सामना करते हुए उन्होंने उत्तर कलकत्ते के बागबाजार में सन् १९०२ ई० में एक बालिका-विद्यालय की प्रतिष्ठा की, जो आज "रामकृष्ण मिशन निवेदिता बालिका विद्यालय के नाम से प्रसिद्ध है। इसके बाद धीरे-धीरे भारत के विभिन्न स्थानों में भी रामकृष्ण-संघ के आदेशानुसार नारी शिक्षा मूलक विविध संस्थाएँ संगठित हो उठी हैं। यथार्थ शिक्षा के माध्यम से नारी जाति के भावी जागरण को लक्ष्य करते हुए स्वामीजी ने दृढ़ स्वर से कहा, "शक्ति के बिना जगत् का उद्धार नहीं होगा। श्रीमाँ का अवतार भारत में उस अद्भुत शक्ति

का संचार करने के लिए हुआ है और उस शक्ति को केन्द्र बनाकर संसार में एक बार पुनः गार्गी और मैत्रेयी आविर्भूत होंगी।" उन्होंने कुछ शिक्षित स्त्रियों में संन्यास का जीवन धारण करने तथा समाज में बालिकाओं की शिक्षा को नियंत्रित करने की अपेक्षा की, जिससे वे आदर्शमयी नारियों की तरह प्रशिक्षित हो सकें। उनकी इच्छा थी कि सन्यासिनियाँ इस प्रकार के कार्य को ग्राम ग्राम में ले जाएँ, जिससे सारा देश, विशेषकर पिछड़े हुए लोग लाभान्वित हो सकें। उन्होंने कहा—"स्त्री जाति का अभ्युदय हुए बिना भारत के कल्याण की संभावना नहीं है। पक्षी का एक पर से उड़ना संभव नहीं। इसीलिए रामकृष्ण के अवतार में स्त्री-गुरु का ग्रहण है, इसीलिए उनकी नारी-भाव से साधना है, इसीलिए मातृभाव का प्रचार है और इसीलिए स्त्री-मठ की स्थापना करना मेरा पहला काम है।" स्वामीजी की यह शेषोक्त परिकल्पना सन् ई० १९५४ में संघ जननी सारदादेवी की जन्म-शताब्दी के उपलक्ष्य में वास्तविकता में परिणत हुई। रामकृष्ण-संघ के तत्वावधान में उक्त वर्ष के २ दिसम्बर को दक्षिणेश्वर काली-मंदिर के समीप ही गंगा के तीर पर "श्री सारदा मठ" के नाम से एक स्वतंत्र नारी-संघ की प्रतिष्ठा हुई।

स्वामीजी का आदर्श है मनुष्य का शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक—तीनों स्तरों पर विकास करना। आध्यात्मिक विकास तो अंतिम अवस्था है। शारीरिक विकास के लिए भोजन, वस्त्र और भवन की आवश्यकता है। मानसिक विकास के लिए समुचित शिक्षा और संस्कृति आवश्यक है तथा आध्यात्मिक विकास के लिए साधना की आवश्यकता है। तीनों स्तरों पर विकसित होकर ही मनुष्य एक पूर्ण विकसित मानव हो सकता। इस प्रकार उन्होंने सर्वांगीण जीवन-दर्शन की प्रस्तुति की।

इसीलिए विवेकानन्द की शिक्षा में धर्म और विज्ञान, त्याग और सेवा, आत्मोपलब्धि और जगत-कल्याण पर बल दिया गया। जीवन का लक्ष्य, जो अंतर एवं बाह्य प्रकृति के नियंत्रण द्वारा अपने को स्वाधीन करना है, को स्पष्ट करने के बाद उन्होंने बताया कि जीवन की समस्याओं के प्रति उत्तरदायी होकर ही सर्वोच्च धर्म सार्थक होता है एवं जीवन की समस्याएँ भी सर्वोच्च धर्म के प्रति उत्तरदायी होकर ही अर्थपूर्ण होती हैं। और जीवन की समस्याओं का समाधान प्रचण्ड व्यावहारिकता के साथ गंभीर आध्यात्मिकता के योग के बिना अथवा एक ही साथ वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक हुए बिना नहीं हो सकता।

विवेकानन्द के अनुसार वही समाज सर्वश्रेष्ठ है, जहाँ सर्वोच्च सत्य कार्यान्वित हो सकता है। सर्वोच्च सत्य को समाज में कार्यान्वित करने का एकमात्र पथ व्यक्ति को सर्वोच्च की ओर जाने के लिए निरंतर प्रेरित करना और दूसरों को भी इसमें सहायता करना है। ये दो कार्य, जो एक साथ चलेंगे—त्याग और सेवा की विवेकानन्द की नयी परिभाषा हैं। उनके 'दरिद्रनारायण सेवा' के नये मंत्र या 'गरीबों को ईश्वर की अभिव्यक्ति मानकर उनकी सेवा' ने संपूर्ण देश को गहराई तक मथ दिया और सुप्त भारत राष्ट्रीय नव-निर्माण के लिए एक बार पुनः उठ खड़ा हुआ। स्वामीजी ने रचनात्मक कार्य के विषय में सन् १८९४ ई० में कहा। बाद में उन्होंने रामकृष्ण मिशन को जो रचनात्मक कार्यक्रम दिया, उसने अपने विस्तार में भारतीय-जीवन की प्रायः सभी बड़ी समस्याओं को आवेष्टित किया, जैसे—मनुष्य निर्माण-कारी शिक्षा का प्रसार, ग्रामीण पुनर्निर्माण, निम्न और पिछड़े वर्ग के लोगों में कार्य, कला, विज्ञान और उद्योग धंधों का विकास, जनता का आर्थिक और सामाजिक उन्नयन, अछूतोद्धार, स्त्री शिक्षा, राष्ट्रीय-विपत्ति के समय राहत-कार्य, भारतीय संस्कृति की रक्षा, संचित जातीय आध्यात्मिक बुद्धि का बिस्तार और सांस्कृतिक-समन्वय का विकास। रामकृष्ण मिशन अपने शांत किन्तु दृढ़ मार्ग से इस कार्यक्रम के क्रियान्वयन में लगा हुआ है। आज देश की अनेक समाज सेवी संस्थाएँ रामकृष्ण विवेकानन्द आंदोलन के आदर्श और कार्यकलापों से प्रेरणा और मार्ग-दर्शन प्राप्त कर रही है। इस आंदोलन

के रचनात्मक कार्यों के कुछ अंश तो भारतीय संविधान में अन्तर्भुक्त किये गये। इतना ही नहीं, स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत सरकार की पंचवर्षीय-योजना ने ऊपर उल्लिखित विषयों में से कुछ विषयों को गंभीरता से लिया है।

इस प्रकार इस आंदोलन ने रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन इन दो अंगों के माध्यम से इतिहास में अपना मार्ग बनाया है। प्रकारांतर से कहा जा सकता है कि इस आंदोलन की प्रमुख अभिव्यक्ति रामकृष्ण-मठ और रामकृष्ण मिशन के कार्य हैं। यह एक ऐसा नाम है जिसे सारे भारत में और बाहर भी आदर प्राप्त है।

लोकोपकारी कार्यों या श्रीरामकृष्ण के संदेशों के प्रचार में निरत इसके संन्यासी सारे संसार में फैले हुए हैं। जहाँ भी वे गये हैं, वहीं एक गहरा-प्रभाव उत्पन्न कर रहे हैं। चुपचाप किन्तु अनिवार्य रूप से वे उनलोगों के मानस को बदल रहे हैं, जो इनके सम्पर्क में आते हैं। ये उनलोगों के व्यक्तित्वों के रूपान्तर में उत्प्रेरक कारग की भांति कार्य कर रहे हैं। इतिहास इसका साक्षी है कि युग-युग में जहाँ कहीं किसी संन्यासी-संघ की प्रतिष्ठा हुई है, वहीं ज्ञान का दीप जला है।

इस संदर्भ में भारत के भीतर और बाहर रामकृष्ण-विवेकानन्द आन्दोलन के कार्यकलापों के महत्व पर युनिवार्सिटी ऑफ साउदर्न कैलीफोर्निया में World Religion के प्रोफेसर श्री क्लायड. एच. रॉस, ने उचित विचार व्यक्त किया है—"रामकृष्ण-आंदोलन आज भारत के अत्यावश्यक समसामयिक धार्मिक और शैक्षणिक आन्दोलनों में से एक है। रामकृष्ण और विवेकानन्द की भावधारा में प्रशिक्षित लोगों के नेतृत्व में रामकृष्ण संघ इसका ज्वलंत उदाहरण है कि कैसे भूतकाल के सीमातीत सत्य वर्तमान-काल में अनवरत शांति प्रदान करते हुए और पुनर्व्याख्यायित होते हुए अपनी महत्ता बनाये रखते हैं। पाश्चात्य-जगत के रामकृष्ण-संघ शांत-भाव से आत्म-ज्ञान और शांति की ओर मानव-जाति के संयुक्त-तीर्थ हेतु पथ बनाने में सहायक हो रहे हैं।"

रामकृष्ण-विवेकानन्द आंदोलन के मूल में केवल संन्यासी ही हैं—यह समझना भूल होगी। सन् १९८० ई० के दिसम्बर में संघ के द्वितीय महाधिवेशन की अध्यक्षता करते हुए तत्कालीन अध्यक्ष स्वामी वीरेश्वरानन्दजी ने कहा था—"संघ शब्द का प्रयोग में व्यापक अर्थ में कर रहा हूँ। प्रायः इसका प्रयोग केवल संन्यासियों के संगठन को सूचित करने के लिए किया जाता है। मैंने इस शब्द का प्रयोग साधारण भक्तों को भी सम्मिलित करने के लिए किया है।" इस प्रकार यह अपनी व्यापकता में रामकृष्ण-विवेकानन्द की विचार धारा से प्रभावित सभी लोगों को, चाहे वे गृही हों अथवा संन्यासी समेट लेता है। आरंभ से ही यह आंदोलन संन्यासी एवं गृही दोनों प्रकार के भक्तों के सम्मिलित प्रयत्न का फल रहा। वास्तव में इसके संबर्द्धन में गृही भक्तों का अवदान किसी भी प्रकार कम नहीं रहा। सुरेन्द्रनाथ मित्र, बलराम बोस, बँगला नाट्यकार गिरीशचन्द्र घोष, रामकृष्ण-वचनामृत के रचयिता महेन्द्रनाथ गुप्त आदि गृही भक्त श्री रामकृष्ण की महासमाधि के पश्चात् उनके बारह शिष्यों के त्यागी-संघ की अस्तित्व रक्षा के लिए ही प्रयत्नशील नहीं हुए, वरन श्री रामकृष्णदेव की शिक्षाओं के अनुसार जीवन-यापन करते हुए समाज में उनके विचारों के प्रचार का माध्यम भी बने। साधु नाग महाशय, रामचन्द्र दत्त, सुरेश दत्त, देवेन्द्रनाथ मजुमदार, अक्षयकुमार सेन—सभी ने अपने-अपने ढंग से इस आंदोलन के प्रसार और प्रचार में योग दिया। स्वामी विवेकानन्द एवं उनके गुरुभाइयों के पाश्चात्य शिष्य भी भारत और विदेशों में इस आंदोलन के विकास में सहयोगी बने, जिनमें मुख्य रहे हैं—श्री एवं श्रीमती हेल, प्रोफेसर हेनरी राइट, श्रीमती ओली बुल, मिस मैक्लिऑड, सिस्टर क्रिस्टीन, कैप्टन सेवियर एवं श्रीमती सेवियर, जे. जे. गुडविन और सिस्टर निवेदिता।

श्रीरामकृष्णदेव द्वारा प्रमाणित यह तथ्य कि सभी धर्म ईश्वर तक ले जाने वाले मार्ग के रूप में उपयोगी हैं तथा सभी मनुष्य एक ही आत्मा के प्रकाश हैं—यह

स्पष्ट करता है कि क्यों यह आंदोलन मूलतः धार्मिक होते हुए भी, अपने कार्य-क्रम में धर्म-परिवर्तन को स्थान नहीं देता और यह भी कि क्यों यह वर्ण, जाति और संप्रदायविहीन सपूर्ण मानव-जाति की सेवा के लिए समर्पित है।

मठ रूपी अंग से यह आंदोलन संसार के सनातन, अद्वितीय और अतिप्राचीन आध्यात्मिक संस्कृति की परंम्पराओं पर अपनी दृढ़ पकड़ रखता है, तो अपने दूसरे मिशनरूपी अंग से समय के अनुकूल मानव-जाति की समस्याओं में प्रवेश करता है और आध्यात्मिक प्रभाव डालने का प्रयास करते हुए दीन, दरिद्र और असहायों की सेवा करता है। मठ आंदोलन को ऊँचाई की ओर उन्नीत करता है तो मिशन विस्तार की ओर। पहला इसे आध्यात्मिक स्थिरता देता है, तो दूसरा इसे मनुष्य जाति से प्रेम करने की शक्ति। मठ ने यदि संन्यासियों एवं संसारी लोगों का आध्यात्मिक मार्ग-दर्शन, प्रेरणा और अवलंबन देने का कार्य किया है तो मिशन ने अपने को जन-समूह के शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नयन में लगाया है।

भारत एवं संपूर्ण मानवता के नव-निर्माण के लिए स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय आध्यात्मिकता और पाश्चात्य वैज्ञानिक जानकारी के समन्वय पर बल दिया। यह रामकृष्ण आंदोलन ही है जिसने उपासना गृहों (मंदिरों) के समीप यांत्रिक संस्थान निर्मित कर, तथा 'शिल्प-मंदिर' के समीप 'तत्व-मंदिर' निर्मित कर भारत एवं संपूर्ण जगत को प्रतीकात्मक रूप में, नये युग की चुनौतियों का सामना करने के लिए विवेक-सम्मत, सर्जनात्मक और प्रगतिशील मार्ग दिखाया। बेलुर-मठ जो इस आंदोलन का प्रधान कार्यालय है, अपने प्रवेश-द्वार के सीमाप्रांत में अनेक यांत्रिक-संस्थानों से घिरा हुआ है।

स्वामी विवेकानन्द के वैज्ञानिक-प्रशिक्षण, सामाजिक न्याय एवं भौतिक उन्नति पर बल को निस्संदेह आज भारत ने उपयुक्त तत्परता से लिया है, तथापि इस विषय में हम निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते कि स्वामीजी द्वारा निर्देशित आध्यात्मिक मूल्यों का वह पूर्णतः अनुसरण कर रहा है। स्वामीजी चाहते थे कि भारत अपने आध्यात्मिक ज्ञान के विनिमय में पाश्चात्य-जगत से वैज्ञानिक-जानकारी प्राप्त करे, जिससे एक ही साथ दोनों के हित में, आदान-प्रदान में तथा परस्पर सेवा में एक समानता स्थापित हो सके। हमारे हजारों विद्यार्थी पाश्चात्य देशों में विज्ञान एवं यांत्रिकी की जानकारी प्राप्त करने जाते हैं, पर कितने योग्य भारतीय सचमुच जाते हैं ज्ञान के उन क्षेत्रों की जानकारी और शिक्षा देने जिनकी आवश्यकता पाश्चात्य-जगत को है?

भारत को अपने तथा संपूर्ण मानव-जाति के प्रति कर्तव्य को स्मरण कराने का प्रयत्न करने वाली एक बलवान शक्ति है रामकृष्ण-विवेकानन्द आंदोलन। मनुष्य, प्रत्येक जगह मनुष्य ही इस आंदोलन की पहली और अंतिम चिन्ता है। मनुष्य का, उसकी आत्मपरिपूर्णता के लिए पूर्णतः पुनरुज्जीवन ही इसकी वांछा है। भारत का यह अनिवार्य कर्तव्य है कि वह अपने द्वारा उत्पादित सर्वोत्तम मनुष्यों के द्वारा इस आंदोलन का संवर्द्धन और प्रोत्साहन करे। क्योंकि यदि भारत इस परिवर्तनकारी शक्ति को, जिसका प्रतिनिधित्व यह आंदोलन करता है, खो देगा, तो वह अपने अस्तित्व की अनिवार्य शर्त को ही गँवा बैठेगा। यह संसार के सभी मनीषियों एवं चिन्तकों का भी कर्तव्य है कि वे मानव-सभ्यता के इस अद्वितीय अनमोल उत्पादन का अध्ययन करें, जो अपने में मानवता के लिए एक आलोक, एक हवन, एक संदेश और एक आशा को लिये हुए है। यह आंदोलन राष्ट्र, धर्म, राजनीति और जाति की सीमा पार करते हुए संसार में प्रत्येक मनुष्य में निहित सर्वोत्तम और सर्वोच्च को चुनौती देता है।

आज यह आंदोलन इस देश में और बाहर के देशों में भी शांति और सुख के लिए एक महान शक्ति बन गया है। भारत में इस आंदोलन ने राष्ट्रीय एकता की एक दृढ चट्टान उपस्थित कर दी है। विश्व को यह एक ऐसे घर में परिवर्तित करना चाहता हैं, जहाँ कोई अजनबी, कोई पराया नहीं है। सभी अपने है। इस विश्व में प्रत्येक को अपना बनाने का कार्य—यह आन्दोलन अनवरत रूप से किये जा रहा है। वह चुपचाप मानव को गढ़ने और चरित्र बनाने में लगा हुआ है। वह लोगों के मन में सही मूल्यों और प्रवृत्तियों के प्रति अभिरुचि पैदा कर रहा है और स्वामीजी के शब्दों में, समाज में आमूल परिवर्तन और सुधार लाने में उसे मदद पहुँचा रहा है, जिससे एक नयी सभ्यता, एक नयी व्यवस्था, एक नया समाज जिसमें संघर्ष एवं घृणा नहीं, बल्कि मैत्री और प्रेम हो—शीघ्रातिशीघ्र अस्तित्व में आ सके। ☐

स्वामी अद्भुतानन्द (लाटू महाराज) की जीवन कथा

—चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय

अनुवादक—स्वामी विदेहात्मानन्द

रामकृष्ण मठ, नागपुर

"वे कहा करते थे—'वही तो हमारा बागबाजार का किला है, कलकत्ते का बैठकखाना है। (श्री अधरचन्द्र सेन के घर को भी बैठकखाना कहा करते थे) ····बलराम बाबू के यहाँ नित्य जगन्नाथ-सेवा होती थी, इसलिए तो वे उनके अन्न को बड़ा शुद्ध कहते थे।··· घर में जगन्नाथ का रथ खींचा जाता था, हम सभी को खूब खिलाते थे।··· वे (ठाकुर) जितनी बार उनके यहाँ जाते, लिखकर रख लेते। हमने सुना है कि वे (ठाकुर) उनके घर सौ बार गये थे।···· वे (बलराम बाबू) बीच-बीच में दक्षिणेश्वर जाते थे।··· ठाकुर उन्हें चैतन्य महाप्रभु की टोली का आदमी कहते थे—ठाकुर ने उनको महाप्रभु के संकीर्तन में देखा था।··· बलराम बाबू ठाकुर को अन्त:पुर में ले जाते थे—उनके भाई (हरिवल्लभ बोस) को यह पसन्द न था। गिरीश बाबू के साथ हरिवल्लभ बाबू की बड़ी गहरी आत्मीयता थी, इसलिए गिरीश बाबू को यह बात मालूम हो गयी। एक दिन उनके (ठाकुर) वहाँ (बलराम बाबू के घर) आने पर गिरीश बाबू ने उनको (हरिवल्लभ बाबू) बुलाया। वे (हरिवल्लभ बाबू) आकर ठाकुर के सामने बैठे। फिर क्या हुआ मालूम है! दोनों ही रोने लगे, किसी ने कुछ कहा नहीं, सिर्फ रोते रहे। वे रोये क्यों यह मेरी समझ में नहीं आया। मैं वह बात जानने के लिए कटक भी गया था, परन्तु उन्होंने (हरिवल्लभ बाबू) वह भेद खोला नहीं।··· बलराम बाबू खूब साधुसेवा करते थे और इसके लिए वे अपनी गृहस्थी से पैसे बचाते थे। इसी कारण उनके नाते-रिश्ते के लोग उन्हें कृपण कहा करते थे। मुझे तो पता नहीं कि उनके पास कितना धन था। एक दिन उन्हें (हाथ से दिखाकर) इतने छोटे बिस्तर पर सोये देखकर मैंने कहा, 'महाशय, आप थोड़ा बड़ा बिस्तर बनवाइए, यह बड़ा छोटा हो गया है।' इस पर उन्होंने जानते हो क्या कहा?—'मिट्टी की देह तो आखिर मिट्टी में मिल जायेगी, परन्तु बिस्तर का पैसा तो साधुसेवा में लगेगा।' मैं तो उनकी बात सुनकर अवाक् ही रह गया। उनके हाड़-हाड़ में साधुसेवा करने की कामना थी, इसीलिए तो वे ऐसी बात कह सके।···· उनकी लड़की की शादी धूमधाम से हुई, परन्तु लड़की के विवाह में वे इतना धन व्यय करने को तो तैयार न थे, वे कहते 'यह आत्मीय-भोजन है या भूत-भोजन।' आखिरकार योगीन को कुछ खिलाने के बाद ही वे सन्तुष्ट हुए। योगीन भाई से सुना है कि वे कहते थे, 'मेरा इतना धन व्यय करना सार्थक हो जायगा, यदि तुम कुछ खा लो।' योगीन ने थोड़ा कुछ खाया था। वे हम लोगों के प्रति बड़ा स्नेह-भाव रखते थे। मैं तो उनके घर कितने ही दिन रहा था। और भी गुरुभाई लोग उनके घर जाया करते थे। राखाल, शरत्, योगीन, तारक, महिम, काली—ये लोग तो प्राय: प्रतिदिन ही उनके घर जाया करते थे, वे इन लोगों के साथ बड़ा मेलजोल रखते थे।" पता नहीं यह बात उन्होंने किस वर्ष के प्रसंग में कही। ठाकुर की महासमाधि के पूर्व की यह घटना हो सकती है, इस अनुमान के साथ हमने उसे

यहाँ सन्निविष्ट कर लिया है। आगे भी इस प्रकार की बातें 'बलराम मन्दिर' अध्याय में लिपिबद्ध हुई हैं।

"एक दिन उन्होंने (बलराम बाबू) कलकत्ता से दक्षिणेश्वर तक के लिए एक गाड़ी बारह आने किराये पर ठीक किया। इस सस्ती गाड़ी पर चढ़कर वे (ठाकुर) बड़ी आफत में पड़ गये। चलते-चलते गाड़ी का चक्का निकल गया और घोड़े भी बदमाशी करने लगे—चाबुक लगाने पर तो वे दौड़ते और जहाँ चाबुक बन्द हुआ तो उनका चलना भी बन्द। इसी प्रकार वे बड़ी रात गये दक्षिणेश्वर पहुँचे। इसी बात को लेकर वे कितना हास-परिहास किया करते थे।"

और एक घटना है।" एक दिन उन्होंने हम सभी को दोपहर में निमन्त्रित किया था। उस दिन राखाल भी था। खाने में देरी देखकर राखाल सो गया। हम लोगों का भोजन समाप्त हो गया तो भी राखाल की नींद नहीं टूटी। यही देखकर ठाकुर ने एक कहानी बतायी—देखो! एक आदमी बगल में चटाई लिये नाटक देखने गया था। नाटक शुरू होने में देरी होगी, अतः उसने सोचा कि थोड़ा लेटकर आराम कर लूँ। लेटे-लेटे ही उसे नींद आ गयी और इसी बीच नाटक भी शुरू हो गया। जब तक नाटक चलता रहा वह भी सोता रहा। नाटक समाप्त होते ही उसकी निद्रा भंग हुई। उठ कर उसने देखा कि सब कुछ सूना पड़ा है। तब उसके मन में बड़ा खेद होने लगा कि इतने मजेदार नाटक से वंचित रह गया। समस्या थी कि घर जाकर वह क्या बतायेगा? रास्ते में चलते-चलते उसने लोगों से पूछ लिया कि कौन से गाने हुए और घर लौटते हुए कहने लगा—आज नाटकवालों ने बड़ा ही सुन्दर गाया। जिन लोगों ने उसे सोते देखा था उनके सामने भी वह यही बात कहने लगा। तब जिन लोगों ने नाटक देखा था वे कहने लगे—तुम तो सो रहे थे, तुमने भला सुना ही कहाँ? इस पर वह आग बबूला होकर बोला—कौन साला कहता है कि मैंने नहीं सुना? और इसके बाद उनमें झगड़ा शुरू हो गया।"

एक भक्त—महाराज, इस प्रसंग का गूढ़ मर्म क्या है?

लाटू महाराज—अरे इतना भी नहीं समझते? इतना सब पढ़ते लिखते हो, तो भी इसका अर्थ नहीं समझते?

भक्त—नहीं महाराज, हम इसका तात्पर्य नहीं समझ पा रहे हैं।

लाटू महाराज—यह सब उन्होंने उनकी (ईश्वरी की) सन्तानों के प्रति कहा है। देखो! इस संसार के रंगमंच पर भगवान की लीला देखने आकर कहीं सो न जाना। यहाँ साधन-भजन के द्वारा जागते रहो। साधन-भजन के बिना इस संसार-लीला को समझ नहीं सकोगे। केवल झगड़ा-टंटा लगा रहेगा। कोई कहेगा 'वे ऐसे' हैं, दूसरा कोई कहेगा 'वे वैसे हैं'। इसी को लेकर संसार में कितना वाग्-वितण्डा चल रहा है, यह तो तुम देखते हो न! परन्तु जिन लोगों ने साधन-भजन करके उन्हें (भगवान को) जान लिया है उनके बीच कोई समस्या नहीं है। वे सभी एक ही बात कहते हैं, एक ही भाव से चलते है। जितना सब गड़बड़ हैं वह उनके चेलों-चामुण्डों के बीच ही है। इन्हीं लोगों ने उन लोगों की उक्तियों को विकृत कर दिया है।

बलराम बाबू के घर में लाटू के निवासकाल में अनेक घटनाएँ हुई थीं, जिन सब का वर्णन करना इस छोटी सी पुस्तक में असम्भव है। उनमें से कुछ को चुन-कर हम यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं। ये विभिन्न गुरुभाइयों तथा भक्तमण्डली की बातें हैं। संक्षेपण के उद्देश्य से इन्हें हम अपनी ही भाषा में लिपिबद्ध कर रहे हैं।—वहीं पर लाटू ने प्रथम बार राखाल महाराज को भावावेश में नृत्य करते देखा।··· यहीं पर उन्होंने अवधूत नित्यगोपाल को भाव में मतवाले होकर चिलसिले के समान दण्डायमान देखा और उनके घण्टों तक इसी अवस्था में अवस्थान करते देखकर ठाकुर उनकी (नित्यगोपाल की) बाह्य संज्ञा फिरा लाये।··· वहीं पर

उन्होंने नरेन्द्र का गायन सुनकर ठाकुर को सर्वप्रथम आँसू बहाते देखा।.... वहीं पर उन्होंने एक तान्त्रिक भक्त के साथ वार्तालाप के दौरान सुना था—'मूर्खों को विश्वास नहीं होता, वे सर्वदा सन्देह ही करते रहते हैं। शिष्य होना है तो गुरु पर संशय रखने से काम नहीं चलेगा—चाहे गुरु कैसे भी क्यों न हों?.... कलिकाल में तांत्रिक क्रियाएँ बड़ी कठिन हैं, हर कोई उनकी साधना नहीं कर सकता। तन्त्र का धर्म वीर का धर्म है। जो शुद्धसत्त्व हैं,केवल वे ही लोग तन्त्र के कार्य (क्रियाकाण्ड) में या साधना में सिद्ध होते हैं।'.... वहीं पर उन्होंने गिरीश बाबू को पहली बार देखा। तुलसी महाराज (निर्मलानन्द) के साथ भी उनका प्रथम परिचय बलराम मन्दिर में ही हुआ था। वहाँ पर छोटे नरेन, हरिनाथ आदि भक्तगण भी आया करते थे।

विस्तार के भय से हम बलराम बाबू का प्रसंग यहीं पर समाप्त करते हैं। घटनाओं के दिन-काल का उल्लेख नहीं कर सका, इसके लिए मैं क्षमाप्रार्थी हूँ।

(१८८२ ई०)। इसी वर्ष लाटू ठाकुर के साथ भक्त प्राणकृष्ण मुखोपाध्याय के घर गया। प्राणकृष्ण को ठाकुर 'मोटा बाह्मन' कहा करते थे। वे प्राय: ही दक्षिणेश्वर को आते थे और बीच बीच में ठाकुर को अपने घर ले जाकर उत्सव का आयोजन करते थे। अन्य भक्तों के घर लाटू को सैंकड़ों-हजारों कार्यों में व्यस्त रहना पड़ता था, परन्तु प्राणकृष्ण बाबू (और अधर सेन) के घर लाटू शान्त भाव से बैठकर भक्तमण्डली की बातें सुन सकता था। वहीं पर उसका बाबूराम (स्वामी प्रेमानन्द) के साथ प्रथम परिचय हुआ। इसके कोई सात दिनों पूर्व बाबूराम पहली बार दक्षिणेश्वर गये थे परन्तु वहाँ पर लाटू को उनके साथ वार्तालाप करने का मौका नहीं मिला था। 'मोटा बाह्मन' के घर बाबूराम के साथ उसके प्रथम मिलन का प्रसंग लिखता हूँ—"उनके (मोटे बाह्मन) घर पर आँटपुर के बाबूराम के साथ मेरी बातचीत हुई थी। बाबूराम तब बड़ा छोटा था, देखने में बड़ा गोरा-चिट्टा और दुबला-पतला था। ठाकुर का उसके प्रति बड़ा स्नेह था। सुना है कि बाबूराम की माताजी ने उसे ठाकुर को सौंप दिया था। देखो तो, माँ हो कर बेटे की कैसी मंगल-कामना की! ऐसी माँ पाना बड़े भाग्य की बात है। जो माँ बेटे को कहती है—'भगवान की प्राप्ति कर, त्यागी संन्यासी हो जा,' वह तो मुक्त माँ है। वह माँ अपने बच्चे को दुःख-भोग में नहीं डालना चाहती। वह स्वयं ही संसार का दुःख-भोग कर लेती है।"

अब हम पुन: प्राणकृष्ण बाबू के प्रसंग को लौट चलें। लाटू उनके घर अनेकों बार गया था, अत: कौन सी घटना किस बार हुई थी, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

"मैंने तो मोटे बाम्हन के घर उन्हें कहते सुना था—'जानते हो! सेवक को काम-क्रोध-लोभ से सावधान रहना चाहिए। देखो न महावीर को। रामजी के काम से लंका जाकर क्रोध के वशीभूत हो उन्होंने क्या कर डाला! पूँछ की आग से लंका को जलाकर राख कर डाला। क्रोध ऐसी ही बुरी चीज है!' वे कहते थे—'जो सेवक जितेन्द्रिय है, वह क्या नहीं कर सकता?...हमें तो वे सर्वदा कहा करते थे—'अरे! काम-क्रोध-लोभ को बढ़ने न देना। वे दुष्ट तो जाने वाले नहीं हैं, इसलिए उनकी दिशा मोड़ देना। काम से कहना—रे काम! तू ईश्वर-कामना लेकर रह, ईश्वर-रमण लेकर रह; तुझे मन को नारी की ओर न ले जाने दूँगा। क्रोध से से कहना रे दुष्ट! तू काम-कामिनी-कांचन का रास्ता रोके रह। उनके आते ही क्रोधपूर्वक हुँकार करना, ताकि वे भय पाकर तुझे जलाने को न आयें। और लोभ से कहना—रे मन! ये सब छोटे-मोटे लोभ क्यों करेगा? बिल्कुल उन्हीं के लोभ में लग जा; वे तो षड्-ऐश्वर्यों के मालिक हैं, उनसे बढ़कर लोभनीय वस्तु दूसरी क्या है?'

हमें एक और भी प्रसंग ज्ञात है।

"जानते हो! एक बार बहुत से लोग दक्षिणेश्वर में मोटे बाम्हन की खूब प्रशंसा कर रहे थे। इसे सुनकर

ठाकुर हँसते हुए उन लोगों से बोले—'अरे, मोटा बाम्हन तो मेरा उत्सव करेगा ही; मैंने उसे घूस जो दे रखा है।'' लाटू महाराज के मुख से यह बात सुनकर एक भक्त अत्यन्त विस्मित हो उठा था और उसने अपनी जिज्ञासा को शान्त करने के लिए उनसे पूछा—'महाराज! ठाकुर ने उन्हें घूस क्यों दिया? वे तो धन-दौलत, मान-यश कुछ भी नहीं चाहते थे—फिर घूस देने की क्या जरूरत पड़ी थी?''

लाटू महाराज—अरे! उन्होंने क्या सचमुच ही घूस दिया था? वह तो उन्होंने हँसी में कहा।

एक भक्त—यह कैसी हँसी हुई महाराज! मेरी तो समझ में नहीं आता। थोड़ा खोलकर बताइये। हम लोग तो उनके कथन का तात्पर्य पकड़ नहीं सके।

लाटू महाराज—अरे! इतना भी नहीं समझे? ठाकुर की कृपा से उनकी (प्राणकृष्ण बाबू) द्वितीय पत्नी के गर्भ से एक लड़का हुआ। सन्तान होने के बाद से ही वे ठाकुर को लेकर खूब उत्सव किया करते थे। इसीलिए उन्होंने कहा –'मैंने उसे घूस जो दे रखा है।'

एक भक्त—यह कैसी बात महाराज! जो कामिनी-कांचन त्यागी हैं, उन्होंने ही प्राणकृष्ण बाबू के लिए सन्तान कामना की!

लाटू महाराज—हाँ! उसमें क्या है? सन्तान कामना में दोष क्या है? संसार (गृहस्थी) तो उन्हें पुकारने के लिए ही है—सन्तान होने पर क्या उन्हें पुकारना नहीं होता?

—(क्रमशः)

भारत के इन दीन-हीन लोगों को, इस पद दलित जाति के लोगों को उनका अपना वास्तविक रूप समझा देना परम आवश्यक है। जात-पाँत का भेद छोड़कर, कमजोर और मजबूत का विचार छोड़कर, हर एक स्त्री-पुरुष को, प्रत्येक बालक-बालिका को, यह सन्देश सुनाओ और सिखाओ कि ऊँच-नीच, अमीर-गरीब और बड़े-छोटे, सभी में उसी एक अनन्त आत्मा का निवास है, जो सर्वव्यापी है; इसीलिये सभी लोग महान् तथा सभी लोग साधु हो सकते हैं। आओ हम प्रत्येक व्यक्ति में घोषित करें—**उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत**—'उठो, जागो और जब तक तुम अपने अन्तिम ध्येय तक नहीं पहुँच जाते, तब तक चैन न लो।'………

तुम अपने को और प्रत्येक व्यक्ति को अपने सच्चे स्वरूप की शिक्षा दो और घोरतम मोह-निद्रा में पड़ी हुई जीवात्मा को इस नींद से जगा दो। जब तुम्हारी जीवात्मा प्रबुद्ध होकर सक्रिय हो उठेगी, तब तुम आप ही शक्ति का अनुभव करोगे, महिमा और महत्ता पाओगे, साधुता आयगी, पवित्रता भी आप ही चली आयगी– मतलब यह है कि जो कुछ अच्छे गुण हैं, वे सभी तुम्हारे पास आ पहुँचेंगे।

– **स्वामी विवेकानन्द**

(वि० सा० खं० ५, पृ० ८८-८९)

श्रीरामकृष्ण की १५०वीं जयन्ती

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द सोसाइटी, जमशेदपुर

जमशेदपुर। स्थानीय रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द सोसाइटी में विगत १ मार्च से २२ मार्च, '८७ तक श्रीरामकृष्णदेव की १५०वीं जयन्ती धूम-धाम से मनायी गयी। इस अवसर पर शिवपुर प्रफुल्ल तीर्थ द्वारा लीला गीति का रोचक कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया। साथ ही फिल्म प्रदर्शन, श्रीरामकृष्ण सहस्र नाम का पाठ और दरिद्रनारामण सेवा तथा कई प्रतियोगिताओं का आयोजन कर पुरस्कार वितरण किया गया। ७ मार्च को,टिस्को के उपाध्यक्ष श्री एस० एन० पाण्डेय की अध्यक्षता में एक जन सभा हुई जिसमें स्वामी तत्वबोधानन्द, सचिव, रामकृष्ण मिशन, राँची ने माँ सारदा के जीवन और संदेशों पर तथा स्वामी उमानन्द, सचिव, रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, पुरुलिया, और डॉ० केदारनाथ लाभ ने श्रीरामकृष्ण के जीवन और संदेश पर प्रेरक प्रवचन दिये। स्वामी विजन महाराज ने धन्यवाद ज्ञापन किया।

रामकृष्ण मठ, इलाहाबाद

इलाहाबाद। स्थानीय रामकृष्ण मठ में १ मार्च से २९ मार्च तक श्रीरामकृष्ण देव की १५०वीं जयन्ती मनायी गयी। ६ मार्च को श्री वी० राघवन एवं श्री वी० आर रवि (बंगलोर) द्वारा रानी रासमणि नामक चलचित्र प्रदर्शन किया गया। ७ मार्च को हिन्दी में श्रीरामकृष्ण लीलागीति प्रस्तुत की गयी जिसके प्रवाचक थे श्री पलक बसु, एडवोकेट। मठ के अध्यक्ष स्वामी हर्षानन्दजी ने संगीत दिये। ८ मार्च को "रामकृष्ण विवेकानन्द आन्दोलन का राष्ट्र निर्माण में योगदान विषय पर दो सत्रों में संगोष्ठी आयोजित हुई। प्रो० माया बैनर्जी ने अंग्रेजी में तथा प्रो० एस० रामचन्द्रन ने हिन्दी में व्याख्यान दिये। श्री टी० एन० चतुर्वेदी, ऑडीटर एवं कम्पट्रोलर जनरल ऑफ इंडिया नयी दिल्ली ने अध्यक्षता की। द्वितीय सत्र में डॉ० शैल पाण्डेय (इलाहाबाद विश्वविद्यालय), ने हिन्दी में तथा प्रो० एस० एन० महाजन (आय० आय० टी० कानपुर) ने अंग्रेजी में निबन्ध प्रस्तुत किये। ९ मार्च को रामकृष्ण मिशन, कानपुर के सचिव, स्वामी रुद्रात्मानन्द की अध्यक्षता में श्रीसारदा देवी दिवस का आयोजन हुआ। डॉ० शैल पाण्डेय ने "श्रीसारदा देवी, स्त्रियों की नयी पुरानी पीढ़ी की एक कड़ी" तथा श्रीमती कल्पना ने "आधुनिक नारियों के लिए श्रीसारदा देवी का संदेश" विषय पर हिन्दी में व्याख्यान दिये। १० और ११ मार्च को क्रमशः स्वामी विवेकानन्द दिवस एवं भगवान श्रीरामकृष्ण दिवस का आयोजन हुआ। अध्यक्ष थे श्रीमत् स्वामी रुद्रात्मानन्द जी महाराज। प्रो० एस० रामचन्द्र ने "आधुनिक व्यक्ति के लिए विवेकानन्द का का संदेश" तथा गृही पुरुषों के लिए श्रीरामकृष्ण का संदेश विषय पर एवं डॉ० केदारनाथ लाभ ने "विवेकानन्द और समाज सुधार" तथा 'महा समन्वयाचार्य श्रीरामकृष्ण" विषय पर क्रमशः भाषण किये। इस अवसर पर श्री अशेष सेन गुप्त ने सुरीले स्वर में दोनों दिन भजन प्रस्तुत किये। १२ मार्च को भगिनी निवेदिता पर चलचित्र प्रदर्शन हुआ और २२ मार्च को नारायण सेवा का आयोजन भी किया गया।

स्वामी विवेकानन्द कृत सम्पूर्ण साहित्य

योग

पुस्तक	मूल्य
ज्ञानयोग	१०.००
राजयोग (पातंजल योगसूत्र, सूत्रार्थ और व्याख्या सहित)	९.००
प्रेमयोग	५.००
कर्मयोग	६.००
भक्तियोग	४.००
ज्ञानयोग पर प्रवचन	२.००
सरल राजयोग	२.००

धर्म तथा अध्यात्म

पुस्तक	मूल्य
धर्मविज्ञान	५.००
धर्मतत्व	४.००
धर्मरहस्य	३.००
हिन्दूधर्म	४.५०
हिन्दू धर्म के पक्ष में	२.००
शिकागो वक्तृता	१.००
नारद-भक्ति-सूत्र एवं भक्तिविषयक प्रवचन और आख्यान	३.००
भगवान श्रीकृष्ण और भगवद्गीता	४.५०
भगवान बुद्ध का संसार को संदेश एवं अन्य व्याख्यान और प्रवचन	६.००
देववाणी (उच्च आध्यात्मिक उपदेश)	८.००
कवितावली (आध्यात्मिक अनुभूतिमय काव्य)	४.००
वेदान्त	४.२५
व्यावहारिक जीवन में वेदान्त	३.५०
आत्मतत्व	३.००
आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग	५.००
मरणोत्तर जीवन	१.५०

जीवनी

पुस्तक	मूल्य
महापुरुषों की जीवनगाथाएँ	६.००
मेरे गुरुदेव	२.००
ईशदूत ईसा	१.००
पवहारी बाबा	१.८०

सम्भाषणात्मक

पुस्तक	मूल्य
विवेकानन्दजी के संग में	११.००
स्वामी विवेकानन्दजी से वार्तालाप	५.००
विवेकानन्दजी की कथाएँ	२.००
विवेकानन्दजी के सान्निध्य में	३.००

विविध

पुस्तक		मूल्य
विवेकानन्द-संचयन—(महत्वपूर्ण व्याख्यान, लेख-पत्र काव्य आदि का प्रातिनिधिक संचयन)		२१.००
पत्रावली—(धर्म, दर्शन, शिक्षा, समाज, राष्ट्रोन्नति इत्यादि सम्बन्धी स्फूर्तिदायी पत्र)	(सजिल्द)	२६.००
	(अजिल्द)	२१.००
भारत में विवेकानन्द, (भारत में दिए हुए व्याख्यानों का संकलन)		२०.००
भारत का ऐतिहासिक क्रमविकास एवं अन्य प्रबन्ध		४.००
हमारा भारत		१.५०
स्वाधीन भारत ! जय हो !		४.००
वर्तमान भारत		१.८०
नया भारत गढ़ो		१.५०
भारतीय नारी		४.००
जाति, संस्कृति और समाजवाद		४.००
शिक्षा		५.५०
सार्वलौकिक नीति तथा सदाचार		१.५०
मन की शक्तियाँ तथा जीवन-गठन की साधनाएँ		१.५०
विविध प्रसंग		४.५०
चिन्तनीय बातें		४.००
परिव्राजक (मेरी भ्रमणकहानी)		४.५०
प्राच्य और पाश्चात्य		३.५०
युवकों के प्रति		६.००
विवेकानन्द—राष्ट्र को आह्वान	(पॉकेट साईज)	१.२५
विवेकानन्दजी के उद्‌गार	(,,)	१.००
शक्तिदायी विचार	(,,)	१.००
सूक्तियाँ एवं सुभाषित	(,,)	१.००
मेरी समर-नीति	(,,)	१.००
मेरा जीवन तथा ध्येय	(,,)	१.००

विस्तृत सूचीपत्र के लिए लिखें :

रामकृष्ण मठ (प्रकाशन विभाग)

धनतोली, नागपुर—४४००१२

Infinite patience, infinite purity, and infinite perseverance are the secret of success in a good cause.

—**Swami Vivekananda**
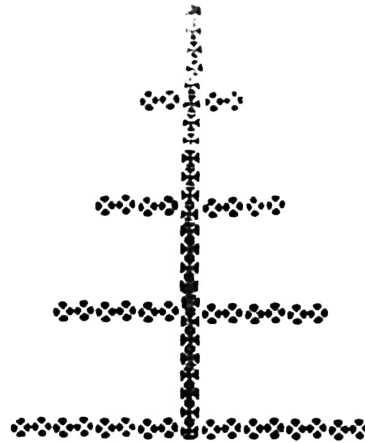
Faith, faith, faith in ourselves, faith, faith in God—this is the secret of greatness.

—Swami Vivekananda

डाक पंजीयित संख्या—सी० एच० पी०—१४-८१

अंक—६—१९८७

विवेक वाणी

भारतवर्ष के सत्यानाश का मूल कारण

भारतवर्ष के सत्यानाश का मूल कारण यही है कि देश की सम्पूर्ण विद्या-बुद्धि राजशासन और दम्भ के बल से मुट्ठी भर लोगों के अधिकार में रखी गयी है। यदि हमें फिर से उन्नति करनी है तो हमको उसी मार्ग पर चलना होगा, अर्थात् जनता में विद्या-प्रचार करना होगा। आधी सदी से समाज-सुधार की धूम मच रही है। मैंने दस वर्षों तक भारत के विभिन्न स्थानों में घूम कर देखा कि देश में समाज-सुधारक सभाओं की बाढ़-सी आयी है। परन्तु जिनका रुधिर शोषण करके हमारे "भद्र लोगों" ने अपना यह खिताब प्राप्त किया और कर रहे हैं, उन बेचारों के लिए एक भी सभा नजर न आयी। मुसलमान कितने सिपाही आये थे ? यहाँ अंग्रेज कितने हैं ? चाँदी के छ: सिक्कों के लिए अपने बाप और भाई के गले पर चाकू फेरने वाले लाखों आदमी सिवा भारत के और कहाँ मिल सकते हैं ? सात सौ वर्ष के मुसलमान रियासत में छ: करोड़ मुसलमान, और सौ वर्ष के ईसाई राज्य में बीस लाख ईसाई क्यों बने ? मौलिकता ने बिलकुल देश को क्यों त्याग दिया है ? क्यों हमारे सुदक्ष शिल्पी यूरोप वालों के साथ बराबरी करने में असमर्थ होकर दिनों-दिन दुर्दशा को प्राप्त हो रहे हैं ? फिर किस बल से जर्मन कारीगरों ने अंग्रेज कारीगरों के सदियों से गड़े हुए दृढ़ आसन को हिला दिया ?

केवल शिक्षा ! शिक्षा ! शिक्षा ! यूरोप के बहुतेरे नगरों में घूम कर और वहाँ के गरीबों के भी अमन चैन और विद्या को देखकर हमारे गरीबों की बात याद आती थी और मैं आँसू बहाता था। यह अन्तर क्यों हुआ ? जवाब पाया—शिक्षा ! शिक्षा से आत्मविश्वास आता है और आत्मविश्वास से अन्तर्निहित ब्रह्मभाव जाग पड़ता है। किन्तु हमारा ब्रह्मभाव क्रमश: निद्रित—संकुचित होता जा रहा है।

स्वामी विवेकानन्द

(पत्रावली, पृ० सं०—७३-७४)

मूल्य : २.५०

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित